

**TEXT CUT WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180131

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H83.1

Accession No. ^{GH}1620

Author N 935

Title ^{११७} मी १८ २११ ५२२३२११

मी १११

This book should be returned on or before the date last marked below.

सागात

लेखक

श्री परशुराम नौटियाल

मु० महासानगांव, पो० कोट

गढ़वाल

प्रकाशक
बा० जगमोहनदास
'आदर्श-मंदिर'
१२३, चित्तरंजन एवेन्यू
कलकत्ता

प्रथम संस्करण : फरवरी १९४३

सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
अमरेन्द्रनाथ मुखोपाध्
दी नेशनल लिटरेचर प्रे
१०५, काटन स्ट्रीट
कलकत्ता

समर्पण

पूज्यपाद

बाबू ललिताप्रसादजी

नौटियाल

मु० महासानगांव, कोट, गढ़वाल

जिनकी सहृदयता और दयालुता ने मेरे असंख्य अपराधोंको क्षमा करके मुझे कुछ लिख सकनेकी ओर अग्रसर होनेका अवसर प्रदान किया, जिनकी ममतामयी छत्र-छायाके नीचे मैं अपनेको सदैव सुखी और सुरक्षित समझता हूं, उन्हीं अपने आदरणीय सहोदर 'बड़े भैया' के चरणोंमें अपनी यह सर्वप्रथम कृति, अपनी समस्त कोमल भावनाओं के साथ सादर समर्पित करता हूं !

परशुराम नौटियाल

अपनी बात

सिनेमासे मेरा सम्बन्ध रहा है, भावनाओंको प्रथय देनेके लिए वहां कुछ भी नहीं है। वहां घटनाओंके निरूपणपर जितना ध्यान दिया जाता है, स्थितिकी वास्तविकतापर उतना महत्व नहीं दिया जाता। सिनेमा-क्षेत्रमें जानेसे पहले ही मेरी रुचिको कल्पनाओंके साथ खेलनेका मौका मिला, घटनाओंने जीवनका साथ दिया और मैं लिखता चला गया। जीवनकी घटनाओंके साथ-साथ सिनेमावाला मेरा वह निरूपणात्मक पहलू भी चलता रहा। इसीलिए मेरी इन कहानियोंमें कहीं-कहीं घटनाओंका विस्तार तो मिलेगा ही, किन्तु उसके साथ मैं अपना ध्येय प्रकट करना भी न भूलूँ।

गति और संजीवन देनेवाली परिस्थितियोंको ही मैं अपने इस प्रयासके मूलमें समझूँगा, किन्तु जिन मित्रोंने मुझे उत्साहित किया, मैं सदाके लिए उनका कृतज्ञ हूँ। श्रीयुत् भगवतीचरण वर्मानी एक दिन मेरी कहानी पढ़कर कहा था—‘भई, तूम लिखा क्यों नहीं करते?’ मासिक ‘विश्वमित्र’ के तत्कालीन सम्पादक श्रीयुत् शिवदेव उपाध्याय ‘सतीश’ ने कहा था—‘एक-एक उपन्यास रहता है तुम्हारी एक-एक कहानीमें।’ श्री पहाड़ीने अपना मत प्रकट करते हुए शायद स्नेहवश व्यंग रूपमें लिखा था—‘सिनेमाके जीव हैं न आप?’ मुझे उनके इस वाक्यसे भी काफी उत्साह मिला था। मुझे यह भी स्वीकार कर लेना पड़ा कि जो कुछ मैं अपने बारेमें सोचता हूँ, कला-मर्मज्ञोंका भी वही मत है।

किन्तु मुझे यह कहनेमें तनिक भी संकोच नहीं होता कि यदि मैं अपनी कलाका आदर्श रखना चाहता हूँ तो पाठकोंको छायावादकी तरह अस्पष्ट कुछ देकर उन्हें गुमराह करनेकी चेष्टा नहीं करता। मुझे श्री भगवतीचरण वर्माकी

इस बातसे काफी बल मिलता रहा है कि 'जो कुछ लिखो स्पष्ट लिखो, घुमाव-फिरावसे औरोंको परेशान होनेका मौका न दो, स्पष्टताका साहस संचित करो ।'

पाठकोंको कुछ सोचनेका मौका देते हुए भी मैं अपनी कहानियोंमें स्पष्टता पाता हूँ, ऐसी मेरी अपनी धारणा है और इस धारणाको प्रमाणित करनेके लिए मेरी 'सौगात' आपके समक्ष है ।

जिनकी कृपासे मुझे इन कहानियोंकी भावनायें प्राप्त हुई हैं, मैं उन्हें इस जीवनमें तो कभी भी नहीं भूल सकता और हाँ, यदि इस जीवनके बाद भी कोई जीवन हो, तो मैं चाहता हूँ किसी भी जीवनमें न भूल सकूँ, किन्तु उनके सामने कृतज्ञता प्रकट करके अपनी हीनताका परिचय न दूँगा, हाँ, उनकी दी हुई यह वस्तु उन्हींके सामने है ।

मैं उन पत्र-पत्रिकाओंका विशेष रूपसे आभारी हूँ जिन्होंने मेरी इन कहानियोंको अपने अमूल्य पृष्ठोंमें स्थान देकर मुझे उत्साहित किया और आज हिन्दी-जगतके सामने मेरी अपनी एक चीज रखनेका मौका दिया ।

कलकत्ता
जन्माष्टमी, २००० वि० }

परशुराम नौटियाल

भूमिका

भाई परशुरामजी नौटियालकी 'सौगात' नामक पुस्तककी अधिकांश कहानियाँ मैंने बड़े चावसे पढ़ी हैं। इन कहानियोंमें जो कहानीपन है, उसने मुझे बहुत आकृष्ट किया है। कहानी आधुनिक युगकी बड़ी देन है, उसके माध्यमसे विचारशील लेखक संसारको अपना संदेश सुनाते हैं। परन्तु कहानीका लक्ष्य चाहे जो भी हो, उसमें जिस गुणका रहना नितान्त आवश्यक है, वह है उसका कहानीपन ; अर्थात् वह भाव, जिससे हम निरन्तर उत्सुकतापूर्वक और सुनते रहनेको तैयार हों। 'सौगात' की कहानियोंमें मुझे यह विशेषता मिली है। ऐसा नहीं जान पड़ता कि लेखक किसी बड़े भारी जागतिक द्वन्द्वको मूलभूतानेके उद्देश्यसे या अपने पाठकोंको किसी बड़ी सचाईका उपदेश कानेके उद्देश्यसे लिख रहा है, बल्कि सर्वत्र सहज ढंगसे कहानी कह दी गई है। 'पथगोंकी झाड़ी' नामक कहानीमें एक ऐसी घटनाका उल्लेख है, जो साधारणतः विश्वमनीय नहीं समझी जाती ; पर लेखकका कहनेका ढंग ऐसा है कि अन्त तक सुननेवालेके मनमें उत्सुकता बनी रहती है। कई कहानियोंमें मनुष्यके व्यक्तिगत अनुभवों और सामाजिक रीतियोंमें नित्यप्रति चलते रहनेवाले द्वन्द्वोंका सुन्दर चित्रण किया गया है। इतिहासकी दुनियासे ऐसी घटनाओंको भी खींचकर कल्पनासे पुष्ट बनाया गया है, जो व्यक्तिके कर्तव्यगत द्वन्द्वोंका बहुत उत्तम प्रदर्शन करती हैं। 'पराजय' और 'नर्तकी' ऐसी ही कहानियाँ हैं। मेरा यह विचार है कि इनमें लेखकका उज्ज्वल भविष्य स्पष्ट ही लक्षित हो रहा है। उन्होंने उस महान तत्वको आयत्त कर लिया है, जो कहानीकी जान है और निस्सन्देह वह तत्व वही है, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है।

हिन्दीमें इस समय बहुत कहानियां लिखी जा रही हैं। एक लेखकने अनुमान लगाया है कि लगभग २०० कहानियां प्रति मास लिखी जा रही हैं। निस्सन्देह इतना विराट् उत्पादन एक बड़ी बात है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि अधिकांश कहानियां केवल समय-क्षेप करने-करानेके लिए लिखी जा रही हैं। केवल बड़ी-बड़ी संख्याओंके हिसाबसे कोई साहित्य महान नहीं हो सकता। क्षणजीवी साहित्य जातिको उन्नत बनानेमें विशेष सहायता नहीं पहुंचा सकता। उत्तम साहित्यकी रचना एक तपस्या है। हमारे युवकोंमें लिखनेका उत्साह है और साहित्यको भरा-पूरा देखनेकी लालसा भी है, यह अभिनन्दनीय बात है; पर उन्हें सदा ध्यान रखना होगा कि वे अपने उत्साहसे एक समूची जातिको उन्नत और महान बनानेकी साधना कर रहे हैं। योग्यता और श्रमकी कमी होते हुए भी यदि लक्ष्यका यथार्थ ज्ञान और मानसिक पवित्रता हो तो बड़ी चीज रची जा सकती है। नौटियालजी जैसे उत्साही और परिश्रमी लेखकोंको देखकर यह आशा होती है। मैं हृदयसे इस उदीयमान और उत्साहपरायण लेखककी सफलता चाहता हूं और आशा करता हूं कि ये भविष्यमें अपने देश और समाजको महान बनानेकी साधनामें अधिकधिक सग्रतन होंगे। इनकी कहानियोंमें जो एक सहज आकर्षक गुण है, वह निश्चय ही सहृदयोंको आकृष्ट करेगा।

हिन्दी-भवन
शान्ति-निकेतन, बंगाल

{ हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्याचार्य, प्रोफेसर विश्व-भारती

अनुक्रमणिका

कहानी	पृष्ठ-संख्या
१ पत्थरोंकी झाड़ी	१
२ मैं भूल न सकूँ	२९
३ गोपू	३७
४ पराजय	४७
५ लाकेट	६५
६ पूर्णिमा	७५
७ उसने कहा था	९७
८ अनुरोधके बाद	१०९
९ वे आखें	१२५
१० हम नगरवासौ	१३५
११ भाभी	१४१
१२ एक तिल	१५३
१३ अन्ध-विश्वास	१६१
१४ नर्तकी	१८३
१५ लापरवाह	१९७
१६ सौगात	२१३

पत्थरोंकी काढ़ी

डाक्टर कश्यपने मुझे जो कहानी सुनाई, उससे हमारे सारे गढ़वालके सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उस कहानीको मैं आप तक पहुँचा दूँ ; इससे पहले डाक्टर कश्यपके बारेमें कुछ बता देना आवश्यक है।

लाहौरमें हम दोनों डाक्टरों पढ़ने थे। जब मेरे घरसे शादीका पैगाम आया तो डाक्टर कश्यपने भी बड़ीनाथ तक जानेकी इच्छा प्रकट की। गर्मीकी छुट्टियाँ थीं ही और हम दोनों चल पड़े लाहौरसे घरकी तरफ। हरिद्वारका टिकट लिया गया और जब हम दूसरे दिन हरिद्वार पहुँचे तो सवेरा हो गया था ! हरकी पौड़ियों पर कुण्डमें हमने दो-दो गोलें लगाये और उसी वक्त हृषीकेशके लिए मोटर-बस पर बैठ गये।

सौगात

यह वह जमाना था, जब सारे गढ़वालमें उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक बाघने आतंक मचा रखा था। देशका देश उसके नामसे थर्राता था, बद्रीनाथसे लेकर हरिद्वार तक उस आदमखोरकी बातोंके सिवा कोई और बात किसीके मुंहपर न थी ! आज किसीकी लड़की खाई तो कल किसीका एकलौता बेटा। आदमी तो आदमी, पशुओं तकमें एक ऐसा भय समा गया था कि वे भी चारे-पानीसे लौटकर चार बजेसे पहले ही सन्नियों पर आ पहुँचते ! बड़े-बड़े शिकारी बुलाये गये, पुलोंपर खटाल रचे गये, मुठोंपर सङ्घिया चारा गया, सरकारने ईनामकी घोषणा की; पर किसी तरह उस बाघका अन्त न हुआ ! मार उसकी बड़ी टेढ़ी होती। आज वह कर्णप्रयाग है तो कल ४५ मील नीचे श्रीनगर और दूसरे दिन कहीं और ही।

गढ़वालमें न तो हवाई जहाज हैं न मोटर-बस ही। सवारीके नाम पर वहां सिर्फ घोड़े हैं और जहां देखो वहीं भयङ्कर काले राक्षसोंकी तरह पहाड़ खड़े हैं। कहीं छोटे-छोटे और घने जंगल भी हैं। वहां चलो तो पैदल, नही तो घोड़ों पर। लेकिन बाघका पीछा करना इस तरह सम्भव न था। वह दिखता तो था नहीं, सिर्फ मरनेवाला ही उसे देख सकता था। सुना सबने था कि वह १३ फुट लम्बा है, ३ फुट चौड़ी उसकी पीठ है, २ मनका अकेला माथा है। वह मारता था या मारने का जादू करता था, कुछ पता नहीं; बहरहाल वह गढ़वालके लिए ऐसा कुछ था, जिसके गीत अभी तक बच्चे-बच्चेकी जवान पर हैं।

गढ़वाल वालोंके लिये वह जितना कुछ था, वहासे बाहर वालोंके लिये वह उतना ही कुछ नहीं था। शिकारियोंके लिये तो उसमें कुछ

पेड़ोंकी टहनियोंसे घिरा हुआ था। गोल-गोल पत्थरोंके घेरोंके बीच-बीचमें छोटे-छोटे अंकुर फूले हुए थे—हमारे लिये वह सब हरी घास थी, पर डाक्टरने एक अंकुर उठाया और नाकपर छुआकर कहा—‘यही वह बूटी है, जिससे लोहा, तांबा बन जाता है।’ उसने मुझसे चाबियों का गुच्छा मांगा और उसे छुआते ही वह ताबेका बन गया। हम सभी को आश्चर्य हुआ। अब हमें विश्वास हो गया कि डाक्टर जो भी दिखायेगा उसके आश्चर्यजनक परिणाममें तनिक भी असत्यता न होगी।

अब डाक्टर उसी पत्थरोंकी भाड़ीके ऊपर बैठकर बड़े मनोयोगसे ‘सिली-सालमा’ की खोज करने लगा, और क्षण भरमें ही वह चिल्लाकर बोला—‘ये रही सालमा!’ उसे भी उसने उठा लिया और हमें दिखाने लगा।

मैंने कहा—‘तो तुम तो अदृश्य नहीं हुए?’

वह बोला—‘अरे इससे अदृश्य नहीं होते, अगर सिलीके प्रयोगसे अदृश्य हो जाय तो इससे दिखाई देने लगेगा। यह तो प्रतिकार है, सिलीका उल्टा!’

मैंने कहा—‘ओह! तो अभी सिली मिले तब कहीं इसका उपयोग समझा जा सकता है, क्यों?’

वह बोला—‘और नहीं तो क्या, देखो मैं अभी उसे भी टूटकर निकालता हूँ, इसे तुम अपने हाथमें संभाल कर रखो।’ सालमाको वह मेरे हाथमें रख ही रहा था कि चाबियोंका गुच्छा फिरसे लोहेका ही बन गया।

मैंने कहा—‘हैं! ये क्या?’

सौगात

डाक्टर भी चकित रह गया, हम सभी चकित रह गये ।

डाक्टरने कहा—‘अच्छा, तो यह नई बात हमने जान ली, याने यह समझ लेना चाहिये कि यहां की जड़ी-बूटियोंके प्रयोगका उल्टा असर ये सालमा करती हैं ! तब तो यह बड़े कामकी चीज है । यह तो मैं भी नहीं जानता था !’

मैंने कहा—‘अब जान लो ।’

श्यामा बोली—‘यह मेरी कृपा है !’ सब हंस पड़े ।

डाक्टर फिरसे पूरे उद्यमके साथ सिली जड़ीको खोजने लगा । थोड़ी देरमें वह थक गया । बोला—‘सिली न मिलेगी ।’

श्यामा बोली—‘मिलेगी कैसे नहीं, खोजिये भी तो ! मैं कहती हूँ मिलेगी !’

डाक्टर—‘ये सामने जो पेड़ है न, इसका पत्ता चबाइये और फिर उसके बाद नमक या मीठा खाइये, आपको ऐसा लगेगा जैसे मिट्टी चबा रहे हों, तोड़ लीजिये उसे ।’ उसने एक पेड़की तरफ इशारा करके कहा ।

हम सभीने पत्ते तोड़ लिये, मगर नमक या मीठा कुछ भी हमारे पास नहीं था । इसलिए इसका प्रयोग पीछेके लिए छोड़कर हम डाक्टरकी ओर गौरसे देखने लगे ! इसी वक्त डाक्टर बोला—‘किस्मत अच्छी है !’

हम सभी एक साथ बोले—‘क्यों, मिल गई ?’

हंमते-हंसते डाक्टरने अंगुलीसे दिखाया—एक बहुत छोटी तिल जैसी काली और महीन बूटी थी । श्यामा उसे पकड़ने दौड़ी, डाक्टरने रोककर कहा—‘वाह ! बड़ा उत्साह है, पहले मैं देखूं तो, वही है या

नहीं ?' और फिर मेरी ओर मुखातिब होकर कहने लगे—'तुम्हारे पास सालमा है न, रखो और देखो, मैं इसे छूता हूँ ; अगर मैं गायब हो गया तो तुम उसी वक्त इस सालमाको जहाँ खड़ा हूँ, फेंक देना । समझ गये तो । देखना, कहीं गड़बड़ न हो जाय ।

हम सभी सांस रोककर डाक्टरके इस दुस्साहसकी ओर देखने लगे । उसी वक्त श्यामाके पिताजीने कहा—'डाक्टर साहब, जाने दीजिए, मत छूड़िए, कहीं कुछ गड़बड़ हो गई तो मुसीबत आ जायेगी ! देख लिया तो है ही ।'

डाक्टरने कहा—'मुसीबत क्या होगी, जैसा मैंने कहा, बस ठीक उसी तरह करनेगे मैं फिरसे दिखने लग जाऊंगा ! आप चिन्ता न कीजिए, कोई बात नहीं !'—कहते-कहते डाक्टरने सिलीको छुआ और छूते न छूते ही वह क्षण-भरमें गायब भी हो गया । हमें ऐसा लगा, जैसे बजू गिरा हो, देखते न देखते सारा शहर उलकर खाक हो गया हो और अब हम सोच रहे हैं कि क्या करें और कहा जाय ?

श्यामा बोली—'छोड़िए उसे !'

मैं जैसे भूल-सा गया था । और जल्दामें मैंने हाथकी सालमाको उसी जगह रखा जहाँ डाक्टर गायब हो गया था, पर यह क्या ? डाक्टर तो दिखाई न दिया । सभीके मुंहमें एक साथ निकला—'हैं ! ये क्या ?' ऐसा अनुभव हुआ जैसे आसमान गिर पड़ा हो, पैरों तलेसे जमीन खिसक पड़ी हो, हमारे मुंहपर हवाइयाँ दौड़ पड़ीं, इसी वक्त श्यामा बोली—'उस बूटीको जरा इधर-उधर सरकाके रखिए तो !'

मैंने वही किया, पर कुछ फल न हुआ, डाक्टर दिखाई न दिया ।

सौगात

श्यामा बोली—‘मालूम होता है यह बूटी सालमा नहीं, कोई और चीज है, गलतीसे इस सालमा समझ लिया गया है !’

मैं समझ गया, हो न हो डाक्टरने सालमाके पहचाननेमें खुद भूल की है। मैं जड़ी-बूटीकी बात एक किस्मसे भूल ही गया और चिल्ला-चिल्लाकर मैंने कहना आरम्भ किया—‘डाक्टर कश्यप ! डाक्टर कश्यप !!’ मगर डाक्टर कश्यप होता तब तो जवाब मिलता ?

हमारी अवस्था इस वक्त ठीक वैसी ही थी जैसे हमने अपने हाथसे अपना घर जला दिया हो और उसकी आचसे अपना जाड़ा मिटा रहे हों। किसीके मुंहपर एक शब्द न था।

एकाएक श्यामा बोली—‘ये क्या अनर्थ हो गया, अब क्या किया जाय ? क्या आप नहीं पहचान सकते सालमा को ? देखिये शायद मिल जाय ?’

मैंने कहा - ‘पहचानता ही, तो अपने हाथसे अपने दोस्तको इस तरह मरने देता ? हाय ये दुर्भाग्य...’—मेरी आखोंमें आसू आ गये।

श्यामाके पिताजीने लम्बी सास लेते हुए कहा—‘मैंने पहले ही कहा था कि न कीजिये, मत झूड़िये, कोई गड़बड़ न हो जाय, और वही हो गया।’

श्यामाकी मांका मुंह अब खुला। बोली—‘ये सब श्यामाके लिये अनर्थ हो गया। ये दुर्भागि छोकरा जहा जायेगी वहीं अनर्थ करेगी। क्या जरूरत थी उन बेचारीको सुबह-सुबह उठाकर यहां लानेकी ; मगर वह मानती है ?’

बिना कहे ही श्यामा अपनेको दोषी करार दे चुकी थी ; अब कहना

व्यथ था, अगर उसका जीवन देकर भी डाक्टरकी जान बच सकती तो वह अपनी जान न्योझावर करनेको तैयार थी, पर कहां था डाक्टर ? वह पत्थरोंकी भाड़ी हमें अब बड़ी रहस्यमय मालूम होने लगी थी । उसे देख हमें डर लगने लगा था, मगर डाक्टरकी अदृश्य मूर्तिको वहीं छोड़, बहासे जानेका दिल भी नहीं चाहता था । सारी दुपहरी निकली, पर हम कोई उपाय न सोच सके ।

श्यामा बोली—‘मैं जाती हूँ उस ‘सालमा’ को खोजकर लाती हूँ ।’ और वह उस बूटीको उठाकर ले गई और पासकी टुकड़ीमें एक भाड़ीके नीचे उसीकी शकलकी दूसरी बूटियोंको खोजने लगी । हम इसे उसका पागलपन समझने लगे । हममें से किसीकी भी दृष्टि उसकी ओर नहीं थी, उस समय हम अगर किसीको देखना चाहते थे तो वह सिर्फ डाक्टर कश्यप था और वह गायब था ।

सभी अपनी-अपनी चिन्तामें व्यस्त थे कि एकायक सभीकी नजर जैसे एक धक्केके साथ श्यामाकी ओर पड़ी और सभीने देखा फूलकी तरह उठाकर किसीने श्यामाको करीब एक जरीब नीचे एक कटीली भाड़ीमें फेंक दिया हो—जैसे बिजलीकी शक्तिसे यह सब एक क्षणमें हो गया हो ! हम सब एक साथ चिल्ला उठे—श्यामा ! श्यामा !! क्या हुआ—क्या हुआ ?’

हम सभी एक साथ दौड़ पड़े नीचेकी ओर, पर उसी वक्त हमने देखा वही १३ फीट लम्बा, ३ फीट चौड़ी पीठवाला और २ मनके अकेले माथे वाला वह आदमखोर फिरसे श्यामाको ढठाने हुए एक छुसांगमें कई जरीब नीचे भीषण जंगलके मध्य जा पहुँचा है । हमसे

सौगात

जितना चीत्कार हो सकता था, किया और अपने प्राणोंकी बाजी लगाते हुए मैं उसी तरफ दौड़ भी पड़ा ।

रास्ता था नहीं, भाड़ी-भांखार और बड़े-बड़े वृक्षोंके तनोंसे टकराता हुआ मैं उसीका अनुसरण कर रहा था, यद्यपि वह दिखाई नहीं देता था । कंटौली भाड़ियोंसे कपड़े चीथड़े हो गये थे, शब्द बहुत कुछ था, पर दिखता कुछ न था ! और मैं जा रहा था नीचे-नीचे गंगाकी तरफ और जब मैं गंगासे आधी मील दूर ऊपरके एक टीलेपर था तो मैंने देखा गंगा जैसे अन्धकूपमें डूबी हुई हो, हताश दृष्टि मैंने इधर-उधर दौड़ाई; पर कुछ नहीं, न कोई शब्द न कोई सूरत ! मैं अनुमान भी न लगा सका कि मैं कहा हूँ, कैसे यहां तक आ गया ? नीचे देखता हूँ तो पाताल-लोकमें जैसे पहाड़ धंसा हो और ऊपर नजर उठाता हूँ तो आकाश जैसे पहाड़का रूप बनाये खड़ा हो ! पशु पक्षी भी जहां अकेले नहीं उड़ा करते, वहां मैं अपने आपको अकेले और निस्सहायवस्थामें पा रहा था । कपड़े नाम-मात्रको शरीरमें थे, काटोंके छिद्रनेसे शरीर और मुखमें कई जगह खून जम चुका था । इसी वक्त नीचे गंगा तटके टीले पर मैंने देखा—बाघ शायद श्यामाके मृत शरीरको लिये ऊपरकी तरफ देख रहा है । मैं बेहोश-सा हो गया, डरके मारे मेरे मुंहसे एक भी शब्द न निकला, यद्यपि मैं चिल्ला रहा था । बाघ उसी तरह देख रहा था । मैंने अपने सामनेका एक बड़ा भारी पत्थर पैरसे ढकेला और वह बड़े गरज-भेदी शब्दमें जगह-जगह टकराता हुआ बाघ पर टकराया और उसीके साथ बाघ भी नदीमें गिर पड़ा ।

हवाके एक झोंकेने मुझे स्पर्श किया ही था कि मैं गिरते-गिरते

बचा । मैंने फिर गौरसे नीचे नजर दौड़ाई, न चाप था न श्यामा—
चारों ओर केवल डरावना मुनमान, न कहीं आदम और न
आदमजात ।

ऊपरसे कुछ शोर-सा सुनाई दिया । मैंने उधर देखा—कुछ लोग
इशारेसे मुझे खड़ा रहनेको कह रहे थे । कुछ देर बाद एक मोटी रस्सीके
बल उन्होंने मुझे ऊपर खींचा और उनमें मिलते ही मैंने साग क्रिस्ता
बयान कर दिया ।

श्यामाके माता पिताकी अवस्था मेरे लिये एक असहनीय वेदना
थी । उनही आँखों से रो रही थी, मेरा हृदय कराह रहा था । किस
अशुभ घड़ीमें हमने लाहौरसे घरको प्रस्थान किया था । विवाद जैसे
शुभ कार्यमें यह भयानक अशुभ कैसा ?—अशुभ ! दो प्राणियोंका
विनाश ! दो अपनोंका सत्यानाश ! हाय कश्यप !! मैं तुम्हारे घर क्या
लिखूँगा ? और श्यामाके माता-पिता—वे यात्रा करने आये थे—पुण्य-
तीर्थकी यात्रा करने—अपने पिछले पापोंको धोने; किन्तु कितनी मंद्गरी
पड़ी उन्हें यह शुभ यात्रा, अपनी प्राणोंसे प्यारी श्यामाकी बलि चढ़ाकर,
आसुओंकी भीषण झड़ीको लिये अपनी प्यारी इकलौती बेटीकी असहाया-
वस्थाकी असहनीय व्यथाको लिये, उनका हृदय रो रहा था, कराह रहा
था, निम्नाड़ें मार रहा था ।

श्यामा बहती थी लड़कियोंकी सहायतासे पुरुषोंको सौभाग्य समझना
चाहिए, किन्तु क्या उसकी सहायता करके उस सौभाग्यका अधिकारी मैं
बन सका ? कश्यप गढ़वाल देखना चाहता था, गढ़वालकी बनौपधियों
को देखना चाहता था । देखो भैया ! अपने अदृश्य शरीरसे अब

सौगात

वनौपधियोंको ही जीवन भर देखने जाओ, यही तुम्हारे जीवनकी चरम परिणति है ।

इच्छा हुई जाकर उस पत्थरोंकी भाड़ीपर देखूं, शायद कश्यप मिल जाय ! सोचा, जाकर गंगाके उसी टीलेपर फिरसे श्यामाको देख आऊं, शायद वह बाघके मुंहसे छूटकर गंगासे ऊपर आ गई हो, पर रात हो गई थी अंधेरी रात, कलसे ज्यादा अंधेरी !

दूसरे दिन जाते समय आंशुओंसे भरी हुई बातें श्यामाकी मांके मुंह से निकलीं । वे बोलती थीं—‘बेटा, अगर कहीं उसका पता लगे, तो उसे मेरे पास भेज देना, मेरी बेटीको लौटा देना !’ दिलपर बत्थर रखकर मैंने उन्हें विदा किया और यही कहानी मैंने डाक्टर कश्यपके घर तारके जरिये सूचित कर दी । मैं ही जानता हूँ कि आज बारह वर्षसे मैं जिस अखहनीय ज्वालामें जलता आ रहा हूँ जैसे मैंने ही सब बिया हो, मैं ही उसका प्रायश्चित्त करूंगा । मेरा देश था न गढ़वाल ?

मगर आज मैं ही जानता हूँ कि खुशीसे मेरा हृदय बांसों उछल रहा है । आज पूरे बारह वर्ष बाद हावड़ा स्टेशन पर मैं डाक्टर कश्यपसे बातें कर रहा हूँ । खुशीसे गदगद होकर मैं डाक्टरसे एक साथ इतने प्रश्न कर बैठा कि वह लुब्ध हो गये । बोले—‘अरे तो तुम इतने उतावले क्यों हो रहे हो, सभी कुछ तो तुम्हींको बताऊंगा और इसीलिये तो यहां आया हूँ ! चलो, घरपर चलो ।’

मैं डाक्टर कश्यपको लेकर घरपर आया और उन्होंने जो कहानी सुनाई वह यह है :—

‘सिली’ के प्रयोगसे मैं अदृश्य हो गया, ‘सालमा’ का प्रयोग गलत

निकला, अथवा यूँ समझो कि वह सालमा नहीं थी ; पर मैं अदृश्य होता हुआ भी तुम्हारी सभी बातें सुन रहा था, बहुत देर तक मैं वहीं पर रहा । तुम लोग जो-जो करते थे, मैं देख रहा था ; पर मैं स्वयं न कुछ कर सकता था और न बोल सकता । यह जो मैं बारह वर्ष तक अदृश्य रहा, जानते हो न मैं सोया और न मैंने खाया । उस सिलीके प्रयोगसे मनुष्य अदृश्य हो जाता है, उसे भूख नहीं लगती, नौद नहीं आती, वह बूढ़ा नहीं होता, बोलचाल नहीं सकता, बस सिर्फ देख और सुन सकता है और इन बारह वर्षोंमें मैंने भी देखा और सुना, उफ़ ! क्या क्या देखा और सुना, क्या बताऊँ ।’

मैंने पूछा—‘तुम फिर दिखने कैसे लगे यह तो बताओ । जानते हो तुम्हारे अदृश्य होते ही श्यामा भी.....’

बात काटकर डाक्टरने कहा—‘मैं जानता हूँ, सब बताता हूँ, तुम इस वक्त सिर्फ सुनते जाओ ।’

मैंने सुनने पर मन लगाया ।

वह बोले—‘हां, तो श्यामाको जब बाघने उठाया तो तुम लोगोंके साथ मैंने भी उसे देखा और मैं भी उसीके साथ उसीके पीछे पीछे भागा, वह जब गंगामें कूदा तो मैं भी कूदा ; मगर पानीके अन्दर देखा जैसे एक बड़ा-सा मन्दिर हो, चारों ओरसे सुन्दर सुहावना बाग, खिले हुए फूल, पहाड़ी भरने, बावड़ियां सभी कुछ और उसके बाद एक भारी कमरा था जिसमें कुछ चित्र थे—प्रस्तर-मूर्तियां । वे मूर्तियां न तो देवी-देवताओंकी थीं और न पौराणिक युगके महापुरुषों की । वे बुद्ध और अशोकके जमानेकी चित्रकला भी नहीं थी और न आधुनिक आर्टिस्टोंका

सौगात

आर्ट। वे चित्र कुछ ऐसे थे जैसे मगरकी पूंछ और आदमीका सिर, पेड़ोंपर झूलते हुए देहातियोंके अधकटे शरीर, जगह-जगह स्त्री और पुरुषोंकी कंकाल-मूर्तियां, कहीं हजारों गायोंको खदेड़ते हुए एक राक्षस और कहीं पर अत्याचारकी चरम मूर्तिया। मैं उन्हें देखकर डरा नहीं, जानने और पूछनेकी इच्छा होती, पर किससे पूछता और कैसे पूछता, मुझसे तो शब्द ही नहीं निकलता था। कोशिश मैंने की चिल्लाने की, पर कुछ नहीं, आवाज ही नहीं निकली। उसके बाद मैं एक दूसरे कमरेमें गया जहां बहुत-सी भट्टियां जल रही थीं और उनपर बड़े-बड़े जानवर साबुतके साबुत भूने जा रहे थे और हजारों जिन्दा कंगले उस जलते हुए मांस पर चीलोंकी तरह चिपके हुए थे। कहीं एक-एक मासके टुकड़े लिए छीना झपटी हो रही थी। इसके बाद मैं दूसरे कमरेमें गया, वहां देखा तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा—श्यामा जिन्दा थी और एक साधुके चरणों पर प्रणाम करके वह एक कमरेके अन्दर चली जा रही थी, थोड़ा-सा खुला हुआ कमरा मैंने देख लिया था। वहां अच्छे-अच्छे बहुत-से स्त्री-पुरुष एकत्र थे, और आमोद-प्रमोदमें व्यस्त थे ! दरवाजा बन्द हो गया और साधु एक क्षणमें पुनः वही आदमखोर बन गया ! अब मेरी समझमें आ गया कि क्या रहस्य है। तुम्हारे देशमें जो आदमखोर है, वह यही महात्मा है—बड़ी सुन्दर शक्कवाला, बड़ा ही दिव्य और भव्य चेहरा। मैंने चाहा कि सारे गढ़वालमें यह खबर इसी वक्त दूं, पर कैसे फैलाता !

मैंने कहा — ‘क्यों, अखबारसे खबर दे देते ?’

‘अरे देता कैसे ? खाली देखने और सुननेके सिवा मैं और कुछ

भी तो नहीं कर सकता था, सिर्फ चलता था, पर उसका भी मुझे पता नहीं लगता था कि मैं कहां जा रहा हूँ—कितनी ही बार तो गंगाके ऊपर चला, हिमालयमें जहा पक्षी भी नहीं हैं—मैं कई बार चक्कर लगा आया, बड़े-बड़े जंगलोमें बाघ, रीछोके साथ घूमा—कहां गया और कहां नहीं, एक बात है ! खैर, उस वक्त तो मैं उस बाघके पीछे हो लिया और जब गंगाके ऊपर आया तो वह फिरसे साधु बन गया, बस अब मैं भी उसीके साथ जाता हूँ । साधु एक गांवमें जाता है, रातको वहीं रहता है । उस घरकी बहूपर अत्याचार उसने भी देखा, मैंने भी, वह भी कुछ न बोला और मैं तो बोल ही नहीं सकता था । दूसरे दिन बाघ बनकर साधु उसे चम्पत कर गया । एक लड़कीकी एक बृढ़से शादी की गई थी । महात्माने उसे भी भगा दिया । एक नये घरके लिए बलियां दी रही थीं । बाघ उसके लड़केको दूसरे ही दिन चट कर गया । वह मारता तो नहीं था, उसे उठाकर ले जाता था और उसी गंगाके अन्दर । उसीमें सबको रखता था ।

अधिकतर मैंने देखा कि जिस-जिस घरमें अत्याचार होता था, वहीं वह इस तरह करता था अन्य किसी घरमें नहीं । एक दिन कणप्रयागके मठमें बैठा हुआ वह एक साधुसे बातें कर रहा था, वही साधु पहले बोला—‘क्यों आतंक तो तुमने खूब जमा लिया है, अब कब तक और इच्छा है ?’

तो ये महात्मा बोले—‘बस एकाध महीने और ! मगर मैं हार गया हूँ । इस देशके आदमी कुछ ऐसे हैं कि उन्हें मारो तो भी वे अपनेको बचानेकी चिन्ता नहीं करते । घर-घरमें अत्याचार अभी तक जारी है,

सौगात

लड़कियां बूढ़ोंके हाथ अभी तक बेची जाती हैं, ऊंच नीचका अभी तक पूरा प्रभाव है, इस देशमें बलि प्रथा बड़ी भयानक है। शिक्षा भला क्या होगी, मास्टर स्कूलके लड़कोंसे हुक्का भरवाते हैं और खुद उन्हींके सामने हुक्का पीते हैं। पुरुष दिन-भर पसरे रहते हैं और स्त्रियां दिन-रात काममें पिली रहती हैं। ये अत्याचार नहीं सहन होते, इसीलिए मैंने यह छल रचा था। छल क्या, कितनोंको तो यदासे हमेशाके लिए उठा ही दिया है ; पर अब इस तरह न करूंगा। किसी योग्य नेताको इस देशमें भिजवाऊंगा। तब देखता हूँ जागृति होती है या नहीं, और तब भी अगर इस देशमें ऐसे ही अन्धेर रहा तो बीस वर्ष बाद फिर मैं आऊंगा और फिरसे वही अत्याचार आरम्भ करूंगा। अत्याचार मेरा सिर्फ उसीके विरुद्ध होगा जो अत्याचारी होगा, और फिर चाहे वह जो भी कोई क्यों न हो !'—इतना कहकर वह चला गया।

मैं भई, श्यामाको रोज एक बार देखता था। वह बेचारी वहां दुखी नहीं, साधुके अंचलमें वहां कई सौ व्यक्ति हैं और बड़े प्रेमसे रहते हैं। यदासे ज्यादा उन्हें वहां आराम है।

‘मगर दुःख सिर्फ इसी बातका था कि मैं किसीसे बोल न सकता था, तुम्हारे गढ़वालका पत्ता-पत्ता मैंने छान मारा, सभी कुछ देखा ! मुझे बोलनेकी लालसा भी नहीं थी; मगर श्यामासे बातें करनेको मैं छूटपटाता था ; पर जब वहांपर जाता तो.....आवाज कहां थी ! मैं देखता था श्यामा वहां एक सुन्दर युवकसे प्रेम करती है, और इसलिए वह बहुत सुखी थी !’

मैंने कहा—‘वह प्रेम करती है !’

‘क्यों, करेगी नहीं, अब तो वह इस दुनियांकी नहीं, वहीं उसका स्वर्ग है ।’

‘तुम आदमी कैसे फिर बने ?’

‘हां, यह तो मैं भूल ही गया था । क्या हुआ, एक दिन हिमालयके पास एक बड़े चौड़े मैदानमें जा रहा था, घास-फूससे सारा मैदान भरा था कि एकाएक मैं सदृश्य हो गया । शायद वहांपर सालमा बूटी रही होगी और मैं उससे छू गया होऊंगा !’

‘बस जब मैं उस निगले स्थानमें ठीक हो गया, तब मेरे लिए घरकी फिक्र पड़ी और वहांसे मैं सीधा यहां हूँ, मुझे मालूम नहीं, मेरे पिताजी कैसे हैं ? उनका क्या हाल है ?’

‘तो तुम्हें यहांका पता कैसे लगा ?’

‘वहां ही आते वक्त किसीसे मालूम कर लिया था !’

अचरज भरे स्वरमें मैंने पूछा—“मगर एक बात नहीं समझमें आई डाक्टर ! तुम कहते हो; साधु कहता था कि जो अत्याचारी होगा, उसीके विरुद्ध मेरा अत्याचार है, तो श्यामाको उमने क्यों मारा ? उसका क्या अत्याचार था या उसके माता-पिताका क्या कसूर था, वह तो जानते ही हो कितनी अच्छी लड़की थी, उसके माता-पिता भी कितने भले थे, कितना प्यार करते थे ।”

“अरे भई हां, यही तो बात थी जिसे मैं भूलता जा रहा था ।” डाक्टर कश्यपने चायकी चुश्की लेते-लेते कहा—“महात्माने श्यामाको उठानेकी कहानी भी सुनाई थी उसी दूसरे साधुको—कहता था, श्यामा अपने मां-बापकी इकलौती बेटी थी, वह अपने थ्यूटर भट्टजी याने डाक्टर

सौगात

शंकरको जी-जानसे प्रेम करती थी, मगर मां-बापने उन दोनोंकी शादी नहीं की, श्यामा रात-दिन डा० शंकरके प्रेममें खोई रहती थी, इधर डाक्टर शंकरकी शादी दूसरी जगह हो जानेसे श्यामाने अपने मनमें प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह मर जायेगी किन्तु शादी नहीं करेगी, तो यही दुःख था श्यामाका जो सारे जीवन भरके लिये उसने गले बांध लिया था और उसके मां-बापका यही कसूर था कि उन्होंने श्यामाको डा० शंकर जैसे योग्य व्यक्तिके हाथ नहीं सौंपा, इसीलिए उसने श्यामाको ही उस भ्रंशटमे मुक्त कर दिया ।”

“अच्छा डाक्टर, वह महात्मा तो बड़ा समझदार मालूम होता है, याने वह अन्याचार करनेवालों पर नहीं अपितु अन्याचार-ग्रस्तों पर मार करता है ।” मैने कहा ।

डाक्टर कश्यपने मुस्काकर जवाब दिया—“जानते नहीं, मार डालने से जीवन भर तड़फाते रहना कहीं ज्यादा सजा है ।”

कुछ क्षण चुप रहकर डा० कश्यपने फिर कहा—“अरे भई, अब उस डा० शंकरका तो पता बताओ, उसे लिखे कि तुम्हारी श्यामा आज-कल कहाँ रहती है ।”

और हम लोग गये तार घरमें, श्यामाके माता-पिता, डा० कश्यपके घर और डा० शंकरको फिरसे यह कहानी तारके जरिये सूचित कर दी, और गढ़वालके विश्व-दर्शनोंकी सेवामें भी सादर रूपमें भेंट करते हैं ।

नवम्बर १९४०

मैं भूल न सकूँ

आज तक के मेरे जीवनमें जो-जो घटनाएं घटी ; बहुत-सी तो मुझे याद हैं और बहुत सी मैं भूल चुका हूँ । जो याद हैं उनमें भी बहुतोंको भूल जाऊंगा और नई-नई घटनाओंके आवर्तमें अपनेको फंसाता रहूंगा । आने वाली बातें पिछली बातोंको भुलाती ही रहती हैं, इसीलिये तो जीवनकी प्रतिक्रिया चलती रहती है ।

यह जीवन एक लम्बी दौड़ है, जो पैर आगे बढ़ता है, वह पिछले को भुलाता जाता है, घटनाएं जीवनका साथ देती हैं—यह जीवन घटनाओंका केन्द्र है ; जब मैं भी अपने जीवन पर नजर दौड़ाता हूँ, तो मुझे सचमुच ऐसा ही लगता है, यह जीवन घटनाओंका केन्द्र है । किन्तु जीवनको जीवित रखनेके लिये वे पिछली घटनाएं अपने आप ही विस्मृतिके अतल-तलमें समा जाती हैं और अगली घटनाएं जीवन पर अपना कब्जा कर लेती हैं । किन्तु इनमें बहुत ही कम ऐसी घटनाएं होती हैं जिन्हें हम भूलनेसे भी नहीं भूलते, भले ही हम अपनेको भूल जाय और मैं भी जब अपने जीवनकी घटनाओंकी छानबीन करता हूँ तो

सौगात

देखता हूँ उस दिनकी बातको भुलानेसे भी नहीं भूलता, उसके सामने मुझे अपनी मौतसे लौट आने तककी भीषण घटना भी धुंधली-सी दिखाई देती है।

असलमें वह घटना तो कुछ ऐसी नहीं थी जिसे याद रखा जाय या जो इतने दिनों तक याद रह सके, पर वह याद है और इस तरह याद है कि मैं उसे एक क्षणके लिये भी अपने दिमागसे नहीं भुला सका और शायद आगे भी नहीं भुला सकूंगा।

कुम्भका साल था। हिन्दुओंका एक महान पर्व—हरद्वारमें १२ वर्ष बाद कुम्भका मेला आया था। स्नानार्थियों और पुण्य लूटने वालोंमें होड़ लगी थी। हरद्वारमें ८० लाख आदमियोंका जमघट लग गया था।

मैं तब लाहौरमें एक कालेजका विद्यार्थी था। स्वयं-सेवककी हैसियतसे हमारे कालेजका भी एक दल स्पेशल ट्रेनसे हरद्वार पहुँचा था। वर्दी पहन कर हम लोग भीड़में कुचल जानेवालोंको बचानेके लिये गये थे किन्तु पहले ही दिनकी धक्के-मुक्कीमें मैं घायल हो गया और ऐसा घायल हुआ कि सिवा कैम्पमें पड़े रहनेके, मेरे लिये कोई चारा नहीं रहा। शहरमें तिल धरनेको जगह न थी किन्तु मेरा कैम्प सुनसान था, यह सुनसान मुझे अच्छा न लगा और मैं उसी अवस्थामें हरद्वारसे हृषिकेश अपने पिताजीके पास पहुँच गया।

पुण्यार्थियोंके लिये हरद्वार भी वैसा ही पुण्य तीर्थ था और हृषिकेश भी, दोनों जगह एक जैसी भीड़ थी और एक जैसे मजमे थे। अधिकांश लोग हरद्वारकी भीड़से अपनेको बचानेके लिए यहीं भीड़ जमाये हुए थे।

पिताजी वहां एक बंगले पर अवेले वेदान्तकी पुस्तकें लिखनेमें व्यस्त रहा करते थे। पहले दिनके सिवा उनसे बातचीत करनेका मौका नहीं लगा, बैसे भी मैं उनसे डरता था और वे भी ज्यादा बातें करना बसन्द नहीं करते थे। बंगला बहुत बड़ा था और पिताजी वहां अकेले, एक-आध नौकरके सिवा और कोई नहीं था। मुझे उसमें एक अलग कमरा मिल गया और पिताजी की तरफसे मुझे आर्डर दिया गया कि भीड़में बाहर निकलनेकी जरूरत नहीं ! कहीं भीड़भाड़में फिर कुचल गया तो उनके लिखने-पढ़नेमें व्यर्थका व्याघात पड़ जायेगा।

मेरा यही ख्याल था कि इस सारे बंगलेमें पिताजी अवेले ही रहते हैं, इसीलिये मैं कलना भी नहीं कर सकता था कि बंगलेके दूसरे किनारे कोई और परिवार भी रहता है। तीन दिन मुझे वहां रहते हो गये थे, पर मैंने किसीको देखा नहीं था।

तीसरे दिन दोपहरके समय मैं बराम्देमें टहल रहा था कि एक छोरे वाले कमरेमें मुझे एक युवती पलंग पर लेटी हुई किताब पढ़ती दिखाई दी। पास ही में खेलता हुआ उसका एक सात-आठ वर्षका बच्चा था। युवतीकी अवस्था चौबीस-पच्चीससे ज्यादा न रही होगी, किन्तु सुन्दरताके अन्तरालमें स्पष्ट ही उसके गुणोंका आभास मिलता था।

देखते ही मैं ठिठक गया, एकदम कोने पर जाकर मैं खड़ा हो गया। इसी वक्त मैंने देखा—युवती बाहर आई और क्षण भर एक टक मुझे देखकर पुनः भीतर चली गई। मुझे कुछ भय-सा लगा। न जाने इन्होंने मुझे इस तरह आता देखकर क्या समझा होगा ! जान न पहचान, मैं जल्दी-जल्दी वहांसे लौटकर अपने कमरेमें आ गया। मैंने

सौगात

भी किताब निकाली और सोचते - सोचते कुर्सीपर बैठ गया ।

अठारह वर्षकी मेरी उम्र रही होगी, मैं कमरेमें बैठा-बैठा कुछ सोच ही रहा था कि बच्चेकी उंगली पकड़े हुए वह युवती बरामदेसे पिताजीके कमरेकी ओर जाती दिखाई दी, मैंने अपने दर्वाजे पर आकर देखा, वह बिना पूछे या बिना सोचे समझे पिताजीके कमरेमें चली गई । वह उनसे कुछ बातें कर रही थी किन्तु मैं चेष्टा करने पर भी समझ न सका ।

एकाएक मेरे मनमें दो भावनाएं चक्कर काटने लगीं । यह युवती कौन है ? किसके साथ यहां रहती है, पिताजीसे इसका परिचय अवश्य है, पर किसीने मुझे कहा तक नहीं, आखिर मुझे बताया क्यों नहीं ? क्या रहस्य है इसमें ? भगर यह भी तो हो सकता है कि इस बंगलेमें कोई और भी रहते हों और वह उनके कमरेके सामनेसे मेरे अनधिकार प्रवेश की शिकायत करने गई हो ?

पिताजीके शर्की दिमागको मैं अच्छी तरह पहचानता था, न जाने क्या समझते हैं, क्या-क्या कह बैठें ? उनका रटाया मंत्र मुझे स्पष्ट रूपसे इस समय याद आ गया—‘चाहे कोई क्यों न हो, किसी युवतीसे बात न करो ।’ और जब वे सुनेंगे कि मैंने इनके कमरेमें जाकर जान-बूझकर भांका, साथ ही साथ नाश्रयज इशारे भी किये तो वे उसीके सामने मेरी पूजा कर बैठेंगे, आव देखेंगे न ताब बेंतोसे खबर लेना शुरू कर देंगे । वह युवती भी तो मुझे लफंगा, बदमाश और न जाने क्या क्या समझ बैठेगी । और जब वह शिकायत ही करेगी तो इतना ही तो कहेगी नहीं कि वह बेचारा अनजानमें उस ओर चला आया, वह तो शिकायत करेगी और शिकायतके रूपमें ; दंड दिलानेके लिए, झूठ-सच

मैं भूल न सकूँ

सभी कुछ मिला सकती है ; यह आया, जबरन हमारे कमरेमें चला आया, ऐसा किया, वैसा किया और न जाने क्या-क्या कह बैठेगी—और सोचते-सोचते मेरा तो दिमाग भन्ना गया, शरीरसे पसीना बहने लगा ।

पाप कर देना बुरा नहीं, पर उसका सामने आ जाना बुरा है, बड़ी महापाप है । मगर मैं तो निर्दोष था, मैंने क्या किया था ? मैं तो यूँ ही अनजानमें उस ओर चला गया था, मैं उनके कमरेमें भी नहीं गया, मैंने कोई इशारा भी नहीं किया, आखिर ऐसी हरकत मैं करता क्यों ? मेरा दिमाग पागल तो था नहीं । मैं सच्चा हूँ, वास्तवमें सच्चा हूँ और मेरी सचाईका तो यही प्रमाण है कि अब मैं उस तरफ भाँकूंगा, भी नहीं बल्कि आज ही इस सारे दृष्टीकेशसे ही चला जाऊंगा ।

यह सब तो मेरे ऊपर बीतेगी ही, इसे तो मैं सह लूँगा, पर जो दूसरी कल्पना मेरे दिमागमें चक्कर काट रही थी, उसका तो सोचना भी ! ...इतने विशाल बंगलेमें पिताजी अकेले रहते हैं, वे वेदान्तका रिसर्च करते हैं । वे सारे दिन भर लायब्रेरीकी किताबोंमें डूबे रहते हैं, फिर इसमें यह अकेली युवती कौन ? यह बच्चा कौन ? यह यहां क्यों रहती है ? पिताजीका इससे क्या रिश्ता है ? क्या..... ? और मैं कल्पनाओंके अम्बारमें इतना डूबा कि मुझे पिताजीकी आवाज भी न सुनाई दी, वे मुझे बुला रहे थे । तीसरी आवाज पर मेरा ध्यान भंग हुआ । मैं घबड़ाया पसीना पोंछते हुए उनके कमरेमें गया ।

मेरी ओर देखते हुए पिताजीने कहा—‘अरे तूने इनसे परिचय तक नहीं किया ? आज तीन दिन हो गये गुम कमरेमें बैठा ही रहता है । इन्हें नहीं जानता ?’

सौगात

मेरा सन्देह पक्का हो गया, फिर भी मैंने कुछ नहीं कहा, पिताजीकी ओर देखता ही रह गया ।

पिताजीने युवतीकी ओर देखकर कहा—‘तो तुमने ही क्यों न जान-पहचान कर ली ? तुम भी तो कमरेसे बाहर नहीं निकलती !’

युवतीने हास्य-मुखसे कहा—‘मैंने देखा ही नहीं, जान-पहचान क्या करती ?’ और उसने एक कोमल दृष्टि मुझपर डाली ।

पिताजीने कहा—‘मुझे आश्चर्य हो रहा है कि तीन दिन हो गये और दोनोने एक दूसरेको देखा तक नहीं और रहते हैं एक ही मकानमें !’

पिताजीको जैसे विश्वास न हुआ, उन्होंने पुनः मेरी ओर चश्मेवाली आखें घुमाकर कहा—‘सचमुच तुमने इन्हें नहीं देखा ?’

‘देखा तो नहीं, पर...!’

‘पर क्या ?’ पिताजीने पूछा ।

‘ऐसे ही, आज ही देखकर समझ रहा हूँ...’ और आगे मैं नहीं बोल सका । लज्जामें मेरा चेहरा लाल हो गया ।

पिताजीने कहा—‘क्या समझ रहे हो ?’

‘यही कि ये मेरी नई...’ और ‘मां’ का उच्चारण बाहर नहीं निकला और मैंने देखा कि पिताजीका चेहरा बदल गया है और युवती जैसे पहाड़से गिर पड़ी हो । चश्मा उतारते हुए पिताजीने गुर्राकर मेरी ओर देखा । मेरा कलेजा हिल गया ।

वे बोले—‘भूख ! नालायक ! गधे ! और कुछ कहनेको तुम्हें न सूझा ? पढ़-लिखकर यही शिक्षा पा रहे हो ? यह कैसी शिक्षा है, जो तुम्हें पतनकी ओर घसीटे ले जा रही है ? हृदयमें जरा भी विशालता

मैं भूल न सकूँ

गुंजाइश नहीं, डूब मरो चुल्लू-भर पानीमें ! मूर्ख कहींका, नौन्सेन्स !'

अब मुझे काटो तो खून नहीं, देखते-देखते मेरा मुंह काला पड़ गया । पैरों तलेकी जमीन सरकने लगी । आंखोंके सामनेसे रात घूम गई । मुझे लगा—जैसे मेरी विचार-धाराकी नुकीली कीलपर सारी पृथ्वी चक्कर काट रही है । थोड़ी देर पहलेका सूखा पसीना चौगुना होकर बहने लगा । इसी वक्त युवतीने कहा—'क्या बाबूजी ! आप भी खाम-खाह इन्हें डांट रहे हैं, इनका क्या कसूर है ? इन्होंने क्या किया ? इन्हें नहीं मालूम तो ये क्या करें ?'

उसी गुरुनकी तानमें पिताजीने गरजकर कहा—'सभी कुछ तो इन्हें मालूम हो सकता है, वे क्या करें, वे डूब मरें ! मूर्ख कहींका, हट जा मेरे सामनेसे । नालायक ! नौन्सेन्स !'

और मैं जैसे अपने-आप ही बाहर निकल आया । अपने कमरेमें जाकर मैं बेहोश-सा पलंगपर पड़ गया । रुलाई जैसे चौमुखी होकर बहने लगी । इसी वक्त युवतीने मेरे कमरेमें आकर मेरे माथेपर हाथ रखा और बोली—'आप भी बच्चोंकी तरह रोने लग गये, छिः, यह सब तो ठीक नहीं, उठिये, मत रोइये, उठिये-उठिये ।'

मगर मैं उठते-उठते भी न उठ सका । उसी तरह पड़ा ही रहा । थोड़ी देर बाद वह युवती उठकर वहासे चली गई और मैं उठ बैठा ।

मैंने देखा पिताजी छड़ी लिए बंगलेसे बाहर घूमनेके लिए चल पड़े हैं । मुझे अच्छा मौका मिला और मैं बिस्तर लपेटने लगा ।

युवती जैसे यह मौका देख ही रही थी, वहांपर आकर बोली—'अरे ! यह क्या कर रहे हो ? कहांकी तैयारी हो रही है ?'

सौगात

मैं चुप रहा, कुछ न बोला, जो काम कर रहा था, करता ही रहा । युवतीने मेरे हाथसे बिस्तरबन्दकी बेल्ट छीन ली और बोली—‘आप अभी नहीं जा सकते, बाबूजीको आ जाने दीजिये ।’

मैंने कहा—‘आप चुप रहिये !’

‘मैं आपको नहीं जाने दूगी !’

‘आप कुछ नहीं कर सकतीं, आप चुप रहिये ।’

‘आप अभी मत जाइये, बाबूजीके आने तक ठहर जाइये ।’

‘मुझे अभी जाना है और मैं जा रहा हूँ ।’

‘तो आदमी भेजकर बाबूजीको बुलवाती हूँ ।’

‘आप ईश्वरको भी बुलवाइये, मैं नहीं ठहर सकता ; छोड़ दीजिये, मुझे अपना काम करने दीजिये ।’

‘मैं अनुरोध करती हूँ, अभी मत जाइये ; मैं प्रार्थना करती हूँ, बाबूजीके आने तक ठहर जाइये ।’

‘नहीं, मैं अभी जाऊंगा, मुझे कोई नहीं रोक सकता ।’

और युवती बेल्ट छोड़कर बराम्देमें चली गई । मैंने अपना बिस्तर और सूट-केस अपने-आप ही उठाया और चल पड़ा । मैंने देखा, युवती बराम्देमें फूट-फूटकर रो रही है । मैं दालानमें चला गया, आगे बढ़ गया और सड़कपर पहुँचा, मोटर पकड़ी हरिद्वार पहुँचा, दो दिन स्टेशनपर पड़े रहनेके बाद लाहौरका टिकट पा सका और लाहौर पहुँचा ।

इसके बाद मैं पिताजीको नहीं देख सका । उनकी आत्मा आज स्वर्गमें है, पर उनकी आत्माका मानसिक आह्वान करते मुझे आज भी मूर्छा-सी आ जाती है, उस पवित्र आत्माके सामने अपना कलंकसे मलिन मुख कैसे दिखा सकूंगा ?

अब भी मेरा जीवन चल रहा है, घटनायें घट रही हैं, कुछ चल रही हैं, कुछ बिसरती जा रही हैं, पर इस घटनाको मैं जब तक हूँ, भूल न सकूंगा और यह भी न जान सकूंगा कि वह युवती वास्तवमें थी कौन ?

गोपू

जब सभ्य जातियोंमें अत्याचारोंकी कमी होने लगती है, तो वे अत्याचार जाकर गरीबोंकी भोंपड़ियोंमें अपना अधिकार जमाने लगते हैं। सामाजिक बुराइयां, बात-बातमें गाली-गलौज और झूठ, दुनिया भरकी यातनायें और यन्त्रणायें एक साथ मिलकर अपना कब्जा इन्हीं गरीबोंके हृदयों पर करते हैं।

गांवका टमोटा (ठठेरा) भीखू अछूत है, बर्तन बनानेका काम करता है, उसीसे जो कुछ पाता है, अपना और अपने घरका खर्च चलाता है, घर कहनेको उसकी एक स्त्री है, सुन्दर, युवती, सीधी साधी। भीखूको अपनी स्त्रीकी सुन्दरता पर नाज है, वह जितनी सुन्दरी है उतनी गुणवती भी है। गांवके ठाकुरोंकी स्त्रियां उससे अक्सर जला करती हैं—पीछे-पीछे छैला, पातर, कलमुंही कहके उसकी निन्दा किया करती हैं। ठाकुरोंकी स्त्रियोंसे उसके पास गहनोंकी भी कमी नहीं, नाकपर डेढ़ तोल्ले की सोनेकी नथ, हाथों पर चांदीकी पौछियां और चूड़ियां, उंगलियों पर अंगूठियां, गलेपर सेर भरका तोड़ा, पैरोंपर पौटे और कड़े, सीनेपर लाल लाल मूंगोंकी माला, जो दूरसे ही चमकती हुई मंगलीको पहचाननेमें मदद पहुँचाती है।

सौगात

ठाकुरोंकी स्त्रियोंके साथ खड़ी जब कभी वह बात करती है, तो उसके मुंहसे फूल भरते हैं। कोई नहीं पहचान सकता कि वह अछूत ठठेरेकी स्त्री होगी। वह कभी ठाकुरोंके यहां नमक-तेल मांगने नहीं जाती। जो जरूरत होती है, दूकानसे मंगवा लेती है, पूर्णमासी अथवा संक्रान्तिको वह कभी ठाकुरोंके घरसे खाना नहीं लाती। बुलाने पर वह टाल देती है—‘ठाकुरों, आज मेरी तबियत खराब है, वे अपने तो हैं ही नहीं।’ वह झूठ बोलती है, पर घृणासे अपनेको बचानेके लिये, वह गांवमें काम करने जाती है, पर कुल्लेक असहाय घरोंकी मददके लिये। कभी धान कूट आती है, कभी चौक बुहार आती है। स्वयं खाना और भीखको खिलाना उसका काम था—इतनेके लिये भीखू काफी कमा लेता था।

गांवके प्रधानजी, उस इलाके भरमें न्याय और सज्जनताके लिये प्रसिद्ध थे। प्रसिद्ध ही नहीं, हरएक जगह उनका सम्मान था, हरएकसे मीठी तरह बोलना, आये गयेको खाने-पीनेके लिये पूछना, मेहमानोंकी खास तौरपर खातिरदारी करना, गांवमें कोई भी आया हो उसके पास दो घड़ी बैठकर गांवकी शान बढ़ाना, उनका नित्यका कार्यक्रम था। रोज पानीपर पंचस्नानी करके दो मिनटकी सन्ध्या करना उन्हें कभी न भूलता था।

जिस दिन भीखू मंगलीको ब्याहके लाया था तो नकद एक सौ रुपये गिनकर प्रधानजीने उसे दे दिये थे। गांवके ही नहीं, दूर-दूर गांवके भी लोग प्रधानजीकी तारीफमें कहा करते—‘भीखूका घर आपने ही खड़ा किया है।’ प्रधानजी अक्सर कहा करते, भीखूको मैं अपने लड़केकी

तरह मानता हूँ। बदलेमें प्रधानजी मौके-बेमौके भीखूसे हथर-उधर जानेका काम करवा लेते। भोला भीखू उनके कामके लिए सदा हाजिर रहता। अपना हजार काम छूट जाय, पर प्रधानजीका काम सबसे आगे! भीखूके बाहर जानेपर प्रायः प्रधानजी अपनी स्त्रीसे कहा करते—‘देखो खाने-पीनेके लिये मंगलीको भी दे देना, भीखूको हमने काम पर भेजा है।’

मगर प्रधानजी जवाब देतीं—‘ऊँह उस नवाबकी बच्चीको तो इतना घमण्ड है कि जैसे वे ही हमारे ठाकुर हैं। उस दिन खाना लेने बुलाया, कलमुं ही आई ही नहीं, फिर भला मुझे क्या गरज पड़ी है!’ और प्रधानजी यह सुन चुप हो जाते।

मंगली असलमें धनी पतिकी खुश किस्मत स्त्री नहीं थी, फिर भी खाने-पीने और कपड़े-लत्तोंका उसे दुःख नहीं था। खेल-तमाशा, बार-त्यौहार वह अपनी शक्ति-भर मना लेती। महीनेमें दो-चार रुपये के बादाम-छुहारे भी वह मंगा लेती। पास-पड़ौसके अछूत बच्चोंको जब वह छुहारे बांटती तो उनकी छीना-भ्रपटीमें वह अपने आपको उनके बीच पा बड़ी खुश होती, छोटे-छोटे बच्चोंको गोदीमें ले प्यार करती, बड़े बच्चों के सिरपर हाथ सुहलाती। बच्चोंको देख उसका दिल खिल उठता, उसे बच्चोंसे बेहद प्यार था। हरी ठाकुरके बच्चेको वह जब भी देखती उसे प्यार करती। वह कभी-कभी बच्चेको देखनेके बहाने हरीके घरपर भी जाती। कभी खास किसी चीजकी जरूरत होनेपर वह हरीसे ही मांग लाती, हरी उसे कभी मना न करता।

वह चाहती थी उसके भी बच्चा होता, वह रोज उसे छातीपर चिप-

सौगात

काये रहती, पर उसकी शादी हुए एक-एक कर आठ दस बघ गुजर गये, उसकी गोद खाली-की-खाली ही रही। बच्चेका मुख देखना उसे नसीब न हुआ।

उसने एक दिन भीखूमे एकान्तमें कहा—

‘क्या जन्म-भर इसी तरह रहना होगा ?’

भीखूका दिल मंगलीकी डबडबाई आंखोंमें खोगया। उसका हृदय विचलित हो गया। हताश और करुणाके स्वरमें कहा—‘मैं क्या करूं मंगली ? भगवानके हाथकी बात.....।’

भगवानका नाम मुनते ही मंगलीका हृदय और भी हताश हो गया। छलछलाते आंसू भरे नेत्रोंसे भीखूकी तरफ देख अबरुद्ध स्वरमें बोली—

‘आज तक अगर कोई उपाय करते तो क्या सच ही बच्चेका मुंह न देख पाती, पर तुम तो.....’ मंगलीका गला रुंध गया। वह कुछ बोल न सकी। सिसक-सिसक कर रोने लगी।

इसी वक्त पड़ौसका एक बच्चा आया बोला—‘भीखू दा, मुझे भी एक गुल्ली दो, तुमने लच्छूको कैसी दी !’ बच्चेके दीन, करुण, म्लान-मुखपर भीखूने गौरसे देखा उसकी आंखोंसे दो बूंद आंसू टपक पड़े। भीखूको चुप देख बच्चा मंगलीकी तरफ गया, बोला—‘भाभी, छुहारे दे !’

सिसकते हुए ही मंगलीने बच्चेको छातीपर लगा लिया, उठकर टूट्टसे छुहारे निकाल तीन-चार दाने बच्चेके हाथमें थमा दिये ! बच्चा खाते-खाते चला गया।

मंगलीका हृदय बच्चेके स्पर्शसे कुछ शान्त हुआ, वह बोली—‘एक दफे निरंकारकी पुजाईसे शायद बच्चेका मुंह देखें—भागमें हो जब।’

इसी वक्त लुहारके लिये सभी बच्चे चिल्लाते आये, मुझे भी भाभी, मुझे भी काकी.....मंगली बच्चोंसे घिर गई, लुहारोंकी छीना-भूषटीमें वह बच्चोंके साथ खो गई—उसके मुखमें मातृत्व आल्हादकी स्पष्ट हंसी थी ।

(२)

आज मंगलीकी गोदमें ५ वर्षका बच्चा था, उसने मनौती सिराई हुई थी—‘निरंकार देवता ! जब मेरा बच्चा ५ वर्षका होगा तो मैं तेरी पूजा करूंगी ।’

भीखूके घरमें निरंकार पूजाकी तैयारी हो रही थी, कल पूजा थी, आज ही भीखूके घर मेहमानोंका आना-जाना आरम्भ हो गया था । मंगलीकी खुशीकी सीमा नहीं थी, आज उसका एकमात्र हृदयका टुकड़ा बड़ी-बड़ी पूजा और मित्रोंके बाद जिसे पाया है—उसका जन्म-दिन है । आज वह गांवकी स्कूलमें विद्यारम्भ करेगा, उसका लड़का बड़ा होगा, पढ़-लिखकर लायक होगा, नौकरी करेगा, रुपया कमायेगा और जो कुछ भी मंगली सोच सकी, सोचने लगी । सोचनेके बाद बच्चेको एक बार गोदमें ले चुपचाप उसके गद्गद् हृदयसे निकला—‘निरंकार देवता ! मेरे बच्चेको सुखी रखना !’

मंगलीकी इस नीरव प्रार्थनाको भीखू समझ गया, वह मुस्करा पड़ा, मंगली शर्मा गई, बच्चा गोपू भी मुस्करा दिया । मंगलीने बच्चेको अपने होठोंपर लगा लिया । दोनों माता-पिता बच्चेको पा आनन्द-विभोर थे ।

किन्तु जोरोंसे हंसती हुई उनकी किस्मत दूर खड़ी थी....।

भीकू ठाकुरोंके पास न्योता देने गया, पंचोके सामने उसने अपनी नम्र प्रार्थना जताई ।

सौगात

पंचोंमें से एक साहब बोले — ‘क्यों रे भीखू ! कितने बकरे देगा ?’

‘ठाकुरो, तीन !’

‘अबे बकरे आये हैं दस-बारह और हमें कुल तीन ही ?’

गांवके प्रधानजीने प्यारसे कहा—‘बेटा भीखू ! गांवके ठाकुरोंको पांच बकरे देने चाहिए—कमसे कम पांच !’

दूसरे साहब बोले—‘अरे कमर खोल दे आज, ठाकुरोंको जिमानेको रोज-रोज दिन थोड़े ही आता है !’

लाचार भावसे भीखू बोला—‘ठाकुरो गरीब आदमी—होता तो आज न देता तो कब देना था ? आपका ही तो पाला-पोसा हूँ !’

सभी चिल्लाकर बोले—‘अबे गरीबका बच्चा न हो—भटक भारी और खीसा खाली, वो मंगलीकी नथ बन्धक रखके ला न, अपनी भयात में तो पांच बकरे दे रहा है, हमें तूने क्या समझा है ?’

‘ठाकुरो, उसे ही बन्धक रखकर तो यह सब हो रहा था, नहीं तो मेरे पास हुण्डी बंधी थी ?’

अभी तक हरि चुप था, अब बोला—‘क्या जरूरत है बेचारेको तकलीफ देनेकी—जितनी सामर्थ्य है, वह दे रहा है ।’

सभीके साथ प्रधानजीकी भी नजर उसपर पड़ी । मालूम हुआ, जैसे उसने अनर्थ कर दिया हो । किसीने कुछ कहा नहीं, पर प्रधानजी गुस्सेमें लाल होकर बोले—‘बड़ी दया आ रही है, तो जाकर उस नकटीके पल्लेसे पल्ला क्यों नहीं भिड़ा लेता, उसीके घरमें क्यों नहीं डेरा डाल देता ?...तू समझता है, तेरी कारस्तानियोंको कोई नहीं समझता होगा ।’

हरी सीधा आदमी था, धीर भावसे ही बोला—‘कैसी कारस्तानी ?’

प्रधानजी तनककर बोले—कितना भोला बनता है, जब पानी-पंगतसे बाहर होगा, तब होश आयेगा, उस दिन मंगलीसे क्या बातें हो रही थीं ?

पंचायतके सभी लोग आश्चर्य-चकित थे । प्रधानजी इतने सीधे-मीठे आदमी आज एकाएक इस तरह गुस्सेमें क्यों ? सभी एक साथ बोल उठे—‘अगर ऐसी बात है तो इसे पानीसे बाहर कर दो—हम लोगोंकी संगतके लायक यह नहीं है ।’

प्रधानजी बोले—‘देख भीखू ! तुम्हे हमने आदमी बनाया है, पाला है, तेरा ब्याह किया है, तेरी बेअदबी आज तक माफ करते आये, पर अब यह सब नहीं होगा । उस मंगलीको जाकर कह दे कि गांव बिगाड़नेकी कोशिश न करे, नहीं तो उसे नकटी बनाकर गांवसे निकाल दिया जायेगा । और हमने सुना है, तेरा लड़का कलसे गांवके स्कूलमें पढ़ेगा ? क्या यह ठीक है ?’

भीखू जैसे पहाड़से गिरा हो—उसके मुंहसे कुछ भी नहीं निकला । उसके दिमागमें हजारों प्रश्न चक्कर काट रहे थे, वह चुपचाप जमीनकी तरफ देख रहा था । यकायक उसके मुंहसे निकल पड़ा—‘ठाकुरो पांच बकरे दूंगा ! आप नाराज न होइये, पर मेरा लड़का...’

प्रधानजी और गरजकर बोले—‘अपने पांच बकरे रख अपने पास, मेरी बातका जवाब दे !’

हाथ जोड़कर भीखू बोला—‘सरकार ! स्कूलमें बच्चा अलग बैठेगा, इसमें क्या हर्ज है ?’

प्रधानजी बोले—‘हर्ज-वर्ज हम नहीं जानते । तू है गांवका डोम, तमोटा, हमारे टुकड़ोंपर पलनेवाला, हमारी मर्जीके खिलाफ तू हर्गिज

सौगात

नहीं कर सकता—कल तेरा गोपू दो अच्छर पढ़कर हमारे सिरपर चढ़नेके लिए आयेगा—‘डोम पढ़ा और अकाल पढ़ा’ भला कहीं डोमोने भी विद्या सीखी है ?’

बेचारे सीधे सादे भीखूके मनमें भी ज्वार आ गया । वह नहीं सहन कर सका, बोला—‘ठाकुरो यह तो आप लोगोंकी जबर्दस्ती है—बच्चा है, जैसा आपका वैसा मेरा । किस जमानेसे हम लोग आश लगाये बैठे हैं, गोपू बड़ा होगा, कुछ सीखेगा...’

बात काटकर प्रधानजी चिल्लाये—‘चूल्हेमें जाय तेरा गोपू और तू भी, हमारे धर्मसे बड़ा नहीं है वह—अब तेरे बाप-दादाने भी कभी पढ़ा था, आज आया बड़ा पढ़ानेवाला—कमीनी जात, अगर ऐसा ही शौक है तो चला जा दिल्लीमें, उस मंगलीको बैठा दे बाजारमें और तब पढ़ा उसे, खामखा हमारा गांव क्यों खराब करता है ?’

गांवके आदमी धर्मात्मा प्रधानजीकी हांमें हां मिला रहे थे, हरी चुपचाप इस बे-इन्साफीको सुन रहा था, उसे भी कुछ कहनेका सास नहीं होता था, बेचारा भीखू कड़े हृदयसे सुन रहा था, प्रधानजी कह रहे थे—‘आज तू पढ़ायेगा, कल रामू कहेगा कि मैं भी अपने लड़केको पढ़ाऊंगा, परसों सारे गांवके डोम स्कूलमें भर्ती होंगे—फिर स्कूल क्या रही, डुमराड़ हो गई । हम ठीक-ठीक कह देते हैं, अगर तूने अपना गोपू स्कूल भेजा तो तू यहां इस गांवमें कतई नहीं रह सकता ।’

भीखूके दम घुट रहे थे, बड़ी मुश्किलसे उसने कहा—‘ठाकुर !...’

जोरोंकी आवाज आई—‘ठाकुरके बच्चे ! तूने ये साहस ही कैसे किया ? अभी धर्मका सत्पानाश नहीं हुआ समझा ?’

भीखूकी भुकी गर्दन और चुप जवान देख, प्रधानजी धीमे स्वरमें बोले—‘देख भीखू ! तेरे बिट्टेसे हमें कोई भगड़ा नहीं, वह उन्नति करे और आसमानके तारे गिने हमें कोई आपत्ति नहीं, पर इसका मतलब यह नहीं कि वह हमारे सिरमें चढ़े, कल वह पढ़-लिख कर हमारी होने-वाली सन्तानको पढ़ानेका दावा करेगा, फिर क्या रह जायेगा धर्मका ? उसे दो अच्छर सिखाना होगा तो किसी ठाकुरके लड़केसे सिखा लेना, अब जाकर अपने पूजाकी तैयारी कर—हां देख, पांच बकरे हम लोगोंको चाहिए, उससे कममें कतई काम नहीं चल सकता ।’

भीखूका दिल चाहता था, पूजाईके बदले वह इस अन्याय पर विद्रोह करे—भले ही उसके प्राण न चले जाय, पर वह अपने लड़केको जरूर स्कूल भेजेगा और अपने मनके आवेगको न रोक सका बोला—

‘ठाकुर आजकी कांग्रेस सरकारने छूत-अछूतका भेद मिटा दिया है । सारे देशके स्कूलोंमें कहीं भेद-भाव नहीं, फिर यह अन्यायका सौदा हमारे ही गावमें क्यों है ?’

गुस्सेमें प्रधानजी आपेसे बाहर हो गये, बोले —‘कांग्रेसका बाप बनता है साला ! अबे कांग्रेसने तेरे घरपर आकर कहा था कि छूत-अछूतका भेद नहीं—क्या कांग्रेसके कहने पर डोम ठाकुर बन जायेंगे ? बदजात कहींका ।’

भीखूका दिल विद्रोही हो उठा, वह अपनी लाचारीको कभी भी माननेको प्रस्तुत न था, किन्तु जबर्दस्तीकी क्या दवा थी ? तर्क वहां पर क्या काम देता ? कांग्रेसको वहां पर कौन मानता ? पर अन्याय—अन्याय था, उसने जिदमें आकर कह दिया—‘सरकारके कानूनको आप

सौगात

नहीं मिटा सकते, आप मुझे कत्ल कर दीजिए, पर मेरा बेटा स्कूलमें जायेगा और जरूर जायेगा !’

प्रधानजी बैठे न रह सके, गुस्सेमें कांपते हुए बोले—‘अरे जाओ इस सालेकी जीभ खैंच लो, इसकी लाश गिरा दो, हुरामजादेको इसकी जिदका मजा चखा दो ।’ और कहते-कहते प्रधानजी लाठी लेकर चौक पर उतर पड़े । बिना पूछे उन्होंने अपनी मोटी छड़ी भीखूके सिरपर घुमा दी, बोले—‘जरूर जायेगा !’

इतनी देरमें मंगली भी अपने बच्चेके साथ वहां पर आ पहुँची थी । घबराकर मंगलीने भीखूकी तरफ देखा, और फिर गरजकर प्रधानजीकी ओर मुड़कर बोली—‘क्यों ठाकुर ! क्या बिगाड़ा है हमने तेरा ? क्यों तेरे हाथ खुजिया रहे थे ?’

मंगली एक डोमनीके मुखसे गांवके सरपञ्चके लिए तू-ता सुनकर सभीके शरीरमें खून उतर आया, पर किसीके मुंहसे एक शब्द भी न निकला । प्रधानजी तमतमा कर बोले—‘पातर रण्डी तू भी मरना चाहती है, चली जा यहांसे नहीं तो ’’।’ प्रधानजी दांत पीसने लगे ।

क्रोधमें मंगलीने जोरसे एक तमाचा प्रधानजीके मुंहपर जड़ दिया, बोली—‘कुत्ता कहींका, वह दिन भूल गया जब मेरे पीछे कुत्तेकी तरह घूमता था, बड़ा बना है सरपञ्च; बदला लेना था तो मुझसे लेता ।’

अपनी पूरी ताकतसे प्रधानजीकी लाठी मंगलीकी तरफ मुड़ी, पर वह जाकर गिरी गोपूके सिरपर और वह बिना चूँ-चां किये वहीपर चित्त हो गया । मंगली चिंघाड़ मारकर जमीन पर गिर पड़ी । खतरा देख ऊपरसे कुछ आदमी नीचे आये, देखा गोपू और भीखू ठण्डे हो गये हैं, मंगली बेहोश है...गांववालोंमें सलाह हो रही है कि यह मामला किस तरह छिपाया जाय ?

जून १९३६

पराजय

मालवके युवराज हेमन्तकुमार अपने शयनागारमें पलंगपर बैठे हैं । नीचे चन्दन काष्ठ निर्मित आसन पर एक युवती बौद्ध भिक्षुणी बैठी है ।

युवती बोली—‘मुझे क्यों बुलाया था ? भिक्षुणीके लिये इस तरह एकान्तमें किसी पुरुषसे मिलना निषिद्ध है । मैं सिर्फ तुम्हारे अनुरोधसे आई हूँ । तुमने सुना नहीं कि मैंने संघमित्राकी भिक्षुणियोंके साथ सेवाव्रत ले लिया है ?’

कातर स्वरमें युवराजने कहा—‘सुना तो है, किन्तु विश्वास नहीं किया ! मैंने क्या अपराध किया है पुष्पिका ? तुमने मुझे क्यों त्याग दिया है, इस भरी जवानीमें तुमने यह सन्यासिनीका वेष क्यों धारण किया है ?’

‘सन्यासिनी होनेका कोई खास समय या उम्र निर्दिष्ट नहीं होती राजकुमार ! राजकुमारी संघमित्रा जब सन्यासिनी बनी थीं तो जानते हो उस समय उनकी उम्र मुझसे ज्यादा नहीं थी । इस तरह कहकर तुम मुझे अपराधिनी न बनाओ !’ पुष्पिकाने उत्तर दिया ।

सौगात

और भी कातर होकर राजकुमारने कहा—‘फिर क्या हुआ पुष्पिका, आज पांच वर्षोंसे मैं जिस स्वप्नको देख रहा हूँ—तुम्हारा मतलब क्या ।’

पुष्पिका बोली—‘मैं तो अपना मतलब बहुत दिन पहले ही बता चुकी हूँ, संघमित्राने हम लोगोंके सामने अति सुन्दर और महान आदर्श उपस्थित किया है। इस क्षणभंगुर संसारमें मग्न न रहकर परमार्थ लाभके लिये चेष्टा करना मनुष्य मात्रका कर्तव्य है ।’

हेमन्तने कहा—‘पुष्पिका ! संघमित्रा तो सन्यासिनी है, उसका आदर्श भिन्न है। भगवान्ने मनुष्यके हृदयमें जो स्नेह और प्रेमका बीजारोपण किया है वह अति सुन्दर है, पवित्र है। संघमित्राके आदर्श से गृह-धर्मका आदर्श किसी भी तरह कम नहीं है ।’

शान्तभावसे पुष्पिका बोली—‘इस विषयमें मेरा सन्देह है। यह मनुष्य हृदयकी ही कमजोरी नहीं, संसारके समस्त प्राणियोंमें ही एक प्रकार का जो शाश्वत आकर्षण है, वह मिथ्या है। मुझे जब यह मालूम ही हो गया है तो क्यों न उस कमजोरीको जीतनेकी चेष्टा करूं ?’

हेमन्तने कहा—‘तुम्हारा यह सन्देह दूर हो जाना चाहिये, झूठे सन्देहसे मनुष्यमें हीनता आ जाती है। संसार-धर्मको छोड़कर नारी अगर चली जाय.....’

हास्यमुखसे पुष्पिका बोली—‘चली जायेगी ? कहाँ चली जायेगी ? नहीं-नहीं राजकुमार ! नारी संसार त्याग करके नहीं जायेगी। इतने दिनों हम घरके अन्दर ही काम करती आ रही थीं, अब संघमित्राने हमारा कार्यक्षेत्र बाहर भी चुन लिया है। इसके लिये तुम्हें लुब्ध नहीं होना चाहिए। कल हम लोग सेवा करने दन्तपुरकी ओर रवाना हो जायेंगे !’

व्यथित स्वरमें हेमन्तने कहा—‘तो तुम बाहरका काम समाप्त करके पुनः मेरे पास लौट आओगी न पुष्पिका ?’

क्षणभर सोचकर पुष्पिकाने कहा—‘मेरी इच्छा अब संसारमें प्रविष्ट होनेकी नहीं, तुम मुझे भूल जाओ । अब जाती हूँ, इस तरह एकान्तमें पुरुषके साथ प्रेमकी आलोचना करना एक भिक्षुणीके लिये शोभा नहीं देता । इसके लिये मुझे दश हजार ‘बुद्ध नाम’ का जप और तीन रात का उपवास करके प्रायश्चित्त करना होगा । नमो बुद्धाय !’

[२]

महाराजा अशोक कलिंगकी राजधानी दन्तपुर और बुद्ध भगवानके दन्त-मन्दिर पर घेरा डाले हुए हैं ।

दन्तपुरकी राजकुमारी हेममालाके सामने मगध राज्यका दूत बैठा है ।

दूतने कहा—‘राजकुमारी ! महाराजा अशोक जानना चाहते हैं क्या कलिंगको अभी भी जयकी आशा है ?’

हेममालाने कहा—‘नहीं, कलिंगने तो बहुत दिन पहले ही जयकी आशा त्याग दी है । महाराज अशोक समग्र कलिंग पर अधिकार कर सकते हैं । किन्तु केवल बुद्ध मन्दिर वाले इस दन्तपुरको छोड़ दें, यही हम भिक्षा रूपमें उनसे चाहती हैं ।’

‘मगर वे समस्त कलिंगको छोड़ सकते हैं, किन्तु इस बुद्ध मन्दिर वाले दन्तपुर पर ही अपना अधिकार चाहते हैं, यही उनकी इच्छा है ।’

दूतका वाक्य सुन हेममालाने उत्तर दिया—‘तो फिर हमसे पूछनेकी क्या आवश्यकता थी ? महाराजकी इस चालाकीका अर्थ हमारी समझमें नहीं आ रहा है । सारे कलिंगमें खूनकी नदियां बहाकर वे इस पुरीके सामने ही आकर युद्धमें क्यों कुण्ठित हो रहे हैं ?’

सौगात

दूतने कहा—‘महाराजकी यह इच्छा नहीं कि भगवानकी पुण्य-भूमि को रक्तसं रंजित किया जाय । युद्धमें जीत तो निश्चित ही है । महाराजा शान्तिके द्वारा ही इस पुण्यभूमि पर अधिकार चाहते हैं ।’

हेममालाने कहा—‘तो इस दन्तपुगीको छोड़ अन्यत्र क्या भगवान वर्जित देश है ? रक्तकी सर्गिता बहाकर महाराजने क्या सारे भारतवर्षको नहीं जीता ?’

विनयपूर्वक दूतने उत्तर दिया—‘मैं तो केवल दूत हूँ राजकुमारी ! महाराजकी इच्छा ही प्रकट कर रहा हूँ ।’

हेममाला बोली—‘महाराजसे कहो कि...।’

इसी वक्त पासके कमरेसे वृद्ध कलिंगराज ब्रह्मदत्त लाठीके सहारे उस कमरेमें आये । हेममालाने उठकर पिताको प्रणाम किया और उनका हाथ पकड़ आसन पर बैठाया ।

ब्रह्मदत्तने कहा—‘बेटा ! अशोकसे अब विरोधकी आवश्यकता नहीं । राजा अशोक ही भगवानके मन्दिरके उपयुक्त अधिकारी हैं, मन्दिर उन्हींको सौंप दो ।’

क्रुद्ध होकर हेममाला बोली—‘नहीं पिता ! अशोक मन्दिरके अधिकारी कभी नहीं हो सकते । प्रभु-सेवाके सिवा जिसका और कुछ काम नहीं, वही इसका उपयुक्त अधिकारी है ।’

शान्त भावसे ब्रह्मदत्त बोले—‘किन्तु हेममाला ! तुम भी तो सेविका के योग्य नहीं हो । अशोकने अगर खूनकी नदियां बहाई हैं, तो तुम भी रक्तसे अपने हाथोंको कलंकित करनेसे नहीं चूकीं !’

हेममालाने कहा—‘वह तो केवल अशोकका आक्रमण रोकनेके

लिए था पिता ! मैं तो प्रभु की सेविका ही हूँ । अपने जीते-जी इस मन्दिरको एक भक्ति-हीन अधार्मिकके हाथों कैसे सौंप सकती हूँ ?

ब्रह्मदत्तने करुण हास्यके साथ कहा—‘बालिका ! प्रभु क्या इसी मन्दिरमें आबद्ध हैं ? विक्रमान्ध राजा भ्रम कर सकते हैं, किन्तु जो सेविका कहकर अपना परिचय देती है, वह भी तो उसी भ्रमसे दूर नहीं है । समस्त जीवन प्रभु की सेवा करके अब क्या मैं इस वृद्धावस्थामें नर-हत्यायें देखूंगा ? हेममाला ! भगवानकी अमर्यादा न करो !’

हेममालाने चुपचाप पिताके कठोर वचनोंको सुन लिया, वह कुछ न बोली । थोड़ी देर बाद ब्रह्मदत्तने पुनः कहना आरम्भ किया—‘हेममाला ! बहुत दिन पहले ही मैं राज-काज छोड़ चुका हूँ । संसारके किसी काममें भी मैं अब लिप्त रहना नहीं चाहता । प्रभुकी दासी, उनकी सेविका समझ तुम्हें कार्य-भार सौंपा है, किन्तु यह क्या हेममाला ! मेरे इस शांतिपूर्ण कलिगमें इतनी नर-हत्यायें, इतना रक्तपात, इतना हाहाकार कैसे ? भगवानकी पुण्यभूमि वह शांतिमय कलिग कहाँ गया ? हेममाला ! सेविकाके रूपमें काम करो, राज्येश्वरी बनकर नहीं ।’

उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही ब्रह्मदत्त उठकर धीरे पदसे चले गये । दूतको विश्रामके लिए भेजकर हेममालाने मन्त्रीसे कहा—‘अब और कोई आशा नहीं दीखती, क्या अभी तक मालवसे दूत नहीं लौटा ?’

मस्तक खुजलाते हुए मन्त्रीने उत्तर दिया— ‘लौटनेसे भी क्या होगा, मालवके युवराज क्या हमारे प्रस्तावको...’

हेममाला उन्हें बिदा देकर, हाथोंमें शिर थमा, गम्भीर चिन्तामें निमग्न हो गई ।

हेमन्तकुमार विश्रामागारमें बैठे-बैठे पुष्पिकाके कठोर व्यवहारकी बात सोच रहे थे। कितनी निष्ठुर, कितनी हृदयहीन है यह नारी ! पांच वर्षोंका बन्धन छिन्न कर अनायास ही निकल भागी, उसके हृदयमें जरा भी दया नहीं आई। और मैं उसी हृदयहीनको स्मरण करते हुए असीम मानसिक यन्त्रणा भोग रहा हूँ। हेमन्तने सोचा, संघमित्राकी सृष्टि करके भगवानने गलती की है। उसके आदर्शके बहकावेमें आकर अनेकों सरल-हृदय युवतियां अपने-अपने परिवारोंको छोड़कर सन्यासिनी बन जायेंगी जिससे जगतकी बहुत बड़ी क्षति होगी।

मन्त्री एक व्यक्तिके साथ कमरेमें प्रविष्ट होता हुआ बोला—
युवराज ! कलिंगका राजदूत आपसे साक्षात्कार करना चाहता है।

श्रु-कुश्रित करके हेमन्त बोले—‘मेरे पास उसे लानेकी क्या जरूरत थी ? आप भी तो उत्तर दे सकते थे ?’

मन्त्रीने कहा—‘कलिंग-दूत जो संदेश लेकर आया है, उसका उत्तर देना हमारे वृत्तेका नहीं युवराज ! कलिंग-दूत विवाह-प्रस्ताव लाया है !’

विस्मय पूर्वक हेमन्तने कहा—‘विवाह प्रस्ताव !’

दूतने कहा—‘हां युवराज ! कलिंगराज ब्रह्मदत्त राजकुमारी हेम-मालाको आपके हाथमें सौंपकर निश्चिन्त होना चाहते हैं। दहेजमें वे कलिंगका सिंहासन दान करेंगे।’

गम्भीर भावसे हेमन्तने कहा—‘हूँ, कलिंगका सिंहासन मगधके भयसे कांप जो रहा है न !’

व्यंग समझकर दूतने कहा—‘युवराज ! कलिंगराज ब्रह्मदत्त आपकी

सहायताके प्रार्थी हैं, मालव और कलिंग मिल जानेपर अशोकको रोकना असम्भव न होगा। राजकन्यासे पाणिग्रहण कर आप दन्तमन्दिरके रक्षक बनिये, जिससे नरघातक, अधार्मिक अशोक प्रभुकी अमर्यादा न कर सके।'

हेमन्तने कहा—'दूत ! कलिंगपतिकी सहायता करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है, मगध, मालवका प्राचीन मित्र है, और मैं पहले ही अशोक को उनकी सहायता करनेका बचन दे चुका हूँ।'

अति विनोत स्वरमें दूतने कहा—'युवराज ! धर्मपरायण ब्रह्मदत्तकी अन्तर्वेदनाका अनुभव कीजिये। भगवानका दन्त-मन्दिर अपने अधिकार में रखकर पूजा करनेकी वे आपसे भिक्षा मांगते हैं।'

हेमन्त बोले—'मैं यह कहनेके लिये बाध्य हो रहा हूँ, राजा ब्रह्मदत्त राजकार्यसे एकदम उदासीन हैं, राजकुमारी हेममालाकी इच्छासे ही यह युद्ध हो रहा है।'

दूत बोला—'ठीक है युवराज ! ब्रह्मदत्त अब वृद्ध हो गये हैं, राज-कन्याको योग्य समझकर ही राज्य-भार उनके हाथों सौंपा है ! आज दश वर्षसे बड़ी योग्यताके साथ राजकन्या राज्यका संचालन कर रही है।'

हेमन्तने कहा—'मैं जानता हूँ, किन्तु प्रबल पराक्रमी मगधेश्वर राजा अशोकसे प्रतिद्वन्दिता करना क्या राजकन्याके लिये उपयुक्त है ?'

दूत बोला—'क्यों नहीं युवराज ! अशोक महापराक्रमशाली होनेपर भी धर्मबलमें राजकन्यासे बहुत निम्न हैं। धार्मिक बलहीन होने ही से क्या अधार्मिकका प्रभुत्व स्वीकार कर लेगा ! आपका मतलब क्या...'

बात काटकर हेमन्तने कहा—'राजकन्याने अन्याय नहीं किया, किन्तु...'

सौगात

दूतने कहा—‘युवराज ! निरुपाय नारी आपसे आज सहायताकी प्रार्थना कर रही हैं, वह आपकी शरणागत है । युवराजको पति रूपमें वरण करके राजकन्याने बह राखी भेजी है ।’

हेमन्तके ललाट पर चिन्ताकी रेखायें खिंच गईं । उन्होंने दूतको प्रतीक्षा करनेको कहा ; दूत चला गया ।

बुद्धिमान मन्त्रीमें युवराजके मनकी चिन्ता छिपी न रही, वह समझ गया, युवकका मन किस दिशामें बह रहा है । उसने कहा—‘युवराज ! भारतमें इस समय अशोक ही एकछत्र सम्राट हैं । उनके विरुद्धाचरण करना अपने ही पैरपर कुल्हाड़ी चलाना है, और खासकर जब उन्हें पहले ही बचन दिया जा चुका है ।’ हेमन्तने उन्हें जानेका इशारा किया और सेनापति विजय सिंहको भेजनेका आदेश दिया । कुछ देर बाद विजय आकर हेमन्तके पास बैठ गया । विजय हेमन्तका बाल्यबन्धु है ! हेमन्तने कहा—‘विजय ! मैं कलिंगका पक्ष लूंगा, मगधकी मैत्री को छिन्न करना होगा । मैंने यह निश्चय कर लिया है, इसमें विस्मय की कुछ भी बात नहीं विजय ! वैचित्र्यपूर्ण मानव-जीवनमें कितने ही पग्विर्तन होते हैं, मैं कलिंगकुमारी हेममालासे विवाह करूंगा ।’

विजय विस्मयसे कुछ क्षण चुप रहकर बोला—‘क्या मैं इसका कारण जान सकता हूँ युवराज !’

एक दीर्घ निःश्वासके साथ हेमन्त बोले—‘तुम भी क्या मुझसे घृणा करते हो विजय ! कारण जानना चाहते हो ? कारण कुछ भी नहीं है, बहुत छोटा है, मैं प्रेम चाहता हूँ और प्रेम करना चाहता हूँ । मैं जानता हूँ, अशोकसे संघर्ष करना राज्यके साथ अपने जीवनसे भी हाथ

धो बैठना है। किन्तु फिर भी जितने दिन जिन्दा रहूँ, प्रेमका प्रतिदान पाकर ही अपने जीवनको सार्थक बनाऊँ।'

विजयने कहा—'नारीसे प्रेमका प्रतिदान पाकर ही कोई अपना मनुष्यत्व विसर्जन कर सकता है, इसका मुझे स्वप्नमें भी ख्याल न था। युवराज ! जरा सोचिये, इस घटनाके बाद संसार आपको क्या कहेगा ?'

युवराजने मस्तक नत करके मित्रका तिरस्कार चुपचाप सहनकर लिया।

[४]

उदयगिरिके संकीर्ण पर्वत-पथसे एक अश्वारोही सैनिक धीरे-धीरे जा रहा है। तीसरा पहर है। 483.1/1935

एकाग्रक पर्वतकी ओटसे एक और अश्वारोही निकला और खड़ा हो गया, क्षणभर बाद बोला—'महाराज, अशोककी जय हो।'।

मगधेश्वर अशोकने कहा— 'कौन, हेमन्त ! अरे, आज मेरा मन न जाने क्यों तुम्हें देखनेको चाहता था। आओ कुछ देर बैठें ; मैं बहुत ही क्लान्त हो गया हूँ।' GH 1120

राजा अशोक मालवके प्राचीन मित्र और हेमन्तके पितृ-बन्धु हैं। किन्तु आज दोनों प्रतिद्वन्द्वी हैं। हेमन्त एकदम अनिच्छासे अशोकके आदेशानुसार उन्हींके पास एक ही पत्थर पर बैठ गया।

अशोक बोले—'वत्स ! कितनी ही बातें मनमें थी, किन्तु तुम्हें देखते ही सब भूल गया हूँ !'

हेमन्त चुप रहे। थोड़ी देर बाद अशोक फिर बोले—'मनुष्य अन्धा है, काम करनेसे पहले वह सोचता भी नहीं कि क्या कर रहा हूँ ! वृद्धावस्थामें भी मेरी इस राज्यलिप्साको देखकर महेन्द्रने मुझे त्याग दिया

सौगात

है, संघमित्रा मुझे छोड़कर चली गई है ! अन्तमें तुमने भी मुझे छोड़ दिया !! अच्छा ही किया हेमन्त ! बलहीन और असहाय कलिंगकी रक्षाका भार लेकर तुमने मनुष्यत्वका ही परिचय दिया है ।’

अशोकके स्नेह सम्भाषणसे हेमन्तका जर्जरित हृदय और भी व्यथित हो उठा, वे बोले—‘तात ! महाराज !! मैं आपका स्नेह पाने योग्य नहीं, मेरा तिरस्कार कीजिये, आपने स्नेह और सहायता देकर चिरकालसे मेरी रक्षा की है, किन्तु आपके ही विरुद्ध मैंने खड्ग धारण किया !’

हेमन्तकी पीठ थपथपाते हुए अशोक बोले—‘अच्छा ही किया वत्स ! नहीं तो मेरी आंखें कैसे खुलतीं ! राजा ब्रह्मदत्तकी कन्यासे तुमने विवाह किया है, इससे मुझे अत्यन्त खुशी हुई है । मैं मगधको लौट रहा हूँ । तपस्विनी हेममालासे कहना पुरी उन्हींकी है, इस लोभी बूढ़ेकी क्या ताकत है कि उस पर अधिकार कर सके !’

हेमन्त अपना गम्भीर दीर्घ निःश्वास रोककर बोले—‘पिता ! यह नहीं हो सकता । मैंने राजकन्याके सामने प्रतिज्ञा की है कि जबतक मेरे शरीरमें खून रहेगा, तबतक मैं मगधसे युद्ध करूंगा ।’

अशोक व्यथित होकर बोले—‘तुमने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की ? बुढ़ापेसे मेरा तो मतिभ्रम हो गया है, पर तुम भी क्या मेरा स्नेह भूल गये ?’

विचलित भावसे हेमन्तने कहा—‘पिता ! आपका स्नेह मैं सहन नहीं कर सक रहा हूँ । मुझमें आपके सम्मुख खड़ा नहीं हुआ जा रहा है । मुझे आदेश दीजिये मैं यहांसे चला जाऊँ !’

अशोक कुछ देर चुपचाप हेमन्तका अन्तर्हृदय टटोलनेकी चेष्टा करते रहे । फिर बोले—‘तुम्हें इतना दुखी क्यों देख रहा हूँ वत्स !

बिना किसी सन्देहके सब बातें कह डालो, पिताके पास कुण्ठित होनेकी आवश्यकता नहीं। तुम स्वाधीन राजा हो, स्वाधीनता पूर्वक काम कर रहे हो, इसके लिये तुम मेरे पास अपराधी नहीं हो।’

हेमन्तने कहा—‘पिता ! सभी बातें अगर मैं कह सकता तो अच्छा ही था, किन्तु कहनेका साहस नहीं हो रहा है। जिस तुच्छ लाभके लिये मैंने सब कुछ खो दिया; वह कहा नहीं जाता, आदेश दीजिये मैं अब जाऊं।’

अत्यन्त विचलित होकर हेमन्त उठकर खड़ा हो गया।

व्यथित होकर अशोक बोले—‘जाओ हेमन्त ! महेन्द्र और संघ-मित्राके त्याग करने पर भी मुझे उतनी व्यथा नहीं हुई थी, जितनी तुम्हारी यह अवस्था देखकर हो रही है। मैं कुछ नहीं समझ पाया हूँ।’

हेमन्त बिना कुछ बोले, अशोकको प्रणाम कर छलांग मार घोड़ेकी पीठपर बैठ गया—क्षणभरमें घोड़ा अदृश्य हो गया।

अशोक कुछ देर क्रिष्ट हृदयसे घोड़ेकी टापोके शब्द सुनते रहे, क्रमशः वे शब्द भी विलीन हो गये।

उस समय रात हो गई थी, अशोक जानेको प्रस्तुत हुए ही थे कि सामने ही पेड़ोंकी भाड़ीसे दो युवती भिक्षुणियां आती दिखाई पड़ीं।

अशोक व्याकुल होकर बोल उठे—‘बेटी संघमित्रा ! अपने नर-घाती पिताके सम्मुख क्यों आई हो ? बेटी !’

भिक्षुणी अत्यन्त मृदु और धीरे भावसे बोली—‘पिता ! आपकी आज्ञा लेकर हम आहत व्यक्तियोंकी सेवा करने आई थीं—पूरी लगनसे

सौगात

हमने इतने दिन उनकी सुश्रुषा की, किन्तु पिता ! इन अनिच्छासे मरते हुए हतभागियोंका कातर विलाप अब नहीं सहा जाता । मेरा मन बहुत ही चञ्चल हो उठा है । कुछ दिन एकान्त ध्यानसे मनको संयत करूंगी, इसीलिये आपकी आज्ञा लेने आई हूँ ।’

विपादपूर्ण स्वरमें अशोकने कहा—‘जाओ बेटी, किन्तु युद्ध तो अभी समाप्त नहीं हुआ, तुम अपना कार्यभार किसे सौंपे जा रही हो ?’

संघमित्राने कहा—‘मेरा कार्यभार मेरी सगिनी भिक्षुणी पुष्पिकाने ले लिया है ।’

अशोक सोचने लगे—महेन्द्र और संघमित्राने यौवनके प्रारम्भमें ही संसार त्याग दिया है । संसारके किसी भी काममें आते ही उन्हें दुःख होता है । करुणा, प्रेम और शान्ति ही उनका एकमात्र लक्ष्य है और मैं क्या कर रहा हूँ ? राज्य-लिप्सामें उन्मत्त होकर रक्तस्रोतसं पृथ्वीको प्लावित करते हुए किसने शान्ति पाई है ?

सोचते सोचते अशोकने धोड़की पीठपर चाबुक मारा, धोड़ा हवासं बातें करने लगा ।

निःश्वास लेकर संघमित्रा बोली—‘मनुष्य कितना दुर्बल और कितना भ्रान्त है, एक झूठी चीजकी पिपासासे उन्मत्त होकर सम्पूर्ण शान्तिको खो बैठता है, फिर भी उसे ज्ञान नहीं रहता ।’

पुष्पिकाने कहा—‘किसे झूठा कहती हो देवि !’

संघमित्रा बोली—‘संसार झूठा है, संसारका सब कुछ झूठा है । केवल ब्रह्म सत्य है ।’

पुष्पिका बोली—‘देवि ! हम जिसे देख रही हैं, जो हम लोगोंके

चारों ओर घूम रहा है, यह जगत क्या भूटा है ? और ज्ञान, बुद्धि, ब्रह्म जिसे हमने देखा नहीं, वह क्या सत्य है ? हम कीटानुकीट हैं, अति लुप्त हैं, शक्तिहीन जीव हैं, हम भला उस अज्ञेय वस्तुको कैसे जान सकते हैं ?'

धीर होकर संघमित्रा बोली—'संसार-पिपासाको दूरकर उसे जाननेकी चेष्टा करनी होगी, तुच्छातितुच्छ वस्तुके लिए मनुष्य जब अपना मनुष्यत्व विसर्जन कर सकता है, रक्त-पात करनेमें कुण्ठित नहीं होता तो क्या सत्य-प्राप्तिके लिए उससे जरा भी चेष्टा नहीं की जा सकती ?'

पुष्पिकाने कहा—'संसार यदि असत्य है, मनुष्य यदि क्षणिक है, तो भगवानने उसके मनमें स्नेह, प्रेम और ममता क्यों भर दी है ? क्या यह सब उसका उपहास-मात्र है ? वास्तवमें यह भी तो भगवानका ही दान है !'

संघमित्राने कहा—'भगवान बुद्धकी शरण लो समस्त भ्रान्ति दूर होगी, एक दिन वह भी था जब एक पक्षीके रक्त-पातसे भी हृदय विदीर्ण हो जाता था, किन्तु आज इस रक्त-पातकी बहती हुई धाराको देखकर भी इन राज्य-लोभियोंके मनमें जरा भी दया नहीं आती !'

पुष्पिका कुछ देर तक चुप रहकर बोली—'देवि ! झूठी और अदृश्य वस्तुओंके लिए इस तरह विचलित नहीं होना चाहिए ! संसार अगर असत्य है और उसकी सभी बातें अगर असत्य हैं तो फिर तुम संसारमें होनेवाली नर-हत्याओं और रक्त-पातोंको कैसे सत्य समझ रही हो ? ये भी तो असत्य और क्षण-भंगुर संसारमें होनेवाली असत्य और क्षण-भंगुर वस्तुयें हैं, फिर इनके लिए इतना अधिक सोचना क्या हमारे मोक्ष-मार्गमें बाधक नहीं होगा ?'

सौगात

धार्मिक विश्वासमें तर्ककी कोई गिनती नहीं, किन्तु उत्तर सहसा नहीं निकलता । संघमित्रा चुप हो गई । थोड़ी देर बाद बोली—‘तुम्हारी सांसारिक तृष्णा किसी तरह नहीं मिट रही है ! क्यों तुम संन्यासिनी बनी थीं ?...बोलो पुष्पिका ! बुद्धं शरणं गच्छामि ।’

पुष्पिका बोली—‘देवि ! एक दिन प्रेम मुझे आग्रहके साथ आलिंगन करने आया था, मैंने उसे मिथ्या समझ दूर ढकेल दिया था ! किन्तु मुझे सदा ही ऐसा मालूम होता है कि प्रेम मिथ्या नहीं, संसार मिथ्या नहीं, मैंने गलती की थी । यदि ब्रह्म सत्य है तो उसकी समस्त सृष्टि भी सत्य है !’

संघमित्रा प्रकृत संन्यासिनी है—संसारका कोई भी आकर्षण, कोई भी तर्क उसे उसके लक्ष्यसे नहीं ढिगा सकता, वह बोली—‘भिक्षुणीके लिए संसारकी चिन्ता करना महापाप है । तुम पाप कर रही हो पुष्पिका ! ओफ ! त्रिशरण मंत्रका स्मरण करो, बोलो—

‘बुद्धं शरणं गच्छामि,
भ्रमणं शरणं गच्छामि,
धर्मं शरणं गच्छामि ।’

(५)

कलिंगकी राजधानी दन्तपुर या पुरीका दन्त-मन्दिर शिल्प कलाके नैपुण्य द्वारा प्राचीन सभ्यताका निम्न-स्वरूप ऊँचा मस्तक किये अभी भी खड़ा है, किन्तु आज उसे दन्त मन्दिरके नामसे नहीं पुकारा जाता । बुद्धका दन्त-मन्दिर आज जगन्नाथपुरीके नामसे संसार-प्रसिद्ध है !

मन्दिरके भीतर सुवर्ण शतदलके ऊपर बुद्धका एक दन्त रखा है,

सामने राजकन्या हेममाला पुजारिणीके वेषमें बैठी है, उसका मुख विषण्ण है।

कुछ क्षण बाद प्रणाम करके उसने दूसरी ओर मुंह फेरा ही था कि देखा, युद्ध वेषमें सुसज्जित हेमन्तकुमार पीछे खड़े हैं।

हेमन्तने कहा—‘हेममाला ! मैं तुमसे विदा लेने आया हूँ, अन्तिम विदा !’

हेममाला स्थिर भावसे बोली—‘यह असम्भव नहीं राजकुमार !’

गम्भीर होकर हेमन्तने कहा—‘हेममाला ! क्या तुम्हारे हृदय एकदम ही नहीं है ? तुम्हारे लिए मैंने अपने प्राचीन मित्र मगधको शत्रु बनाया है, अपने अकृत्रिम बन्धु विजयके हृदयसे अलग हुआ हूँ. पराजय निश्चित जानकर भी मालवकी सारी शक्ति तुम्हारे लिए लगा दी और आज प्राण-त्याग करने जा रहा हूँ ! किन्तु तुम्हारे हृदयमें जरा भी दया न आई ?’

हेममाला बोली—‘मेरे लिये ? राजकुमार तुमने किस खयालसे यह सब मेरे लिये किया ?’

हेमन्त बोला—‘हेममाला ! मैंने तुम्हारा हृदय ही चाहा था, सोचा था कि तुम्हारे स्नेहामृतसे मैं अपना दग्ध हृदय शीतल कर सकूंगा।’

हेममालाने कहा—‘विवाहसे पहले ही तो मैं अपना अभिप्राय तुम्हें समझा चुकी थी, मैंने क्या कहा नहीं था कि भगवान बुद्धने ही मेरे सम्पूर्ण हृदय पर अधिकार जमा लिया है ? इस हृदयमें किसी अन्यका स्थान नहीं ?’

सौगात

गम्भीर मर्मभेदी स्वरमें हेमन्तने कहा—‘ओफ ! पाषाणी ! तुम्हारे लिये मैंने सर्वस्व त्याग कर दिया और प्रतिदानमें तुम कुछ भी न दे सकी !’

हेममाला पहलेकी ही तरह अविचलित भावसे बोली—‘राजकुमार ! तुम व्यर्थ ही मुझे दोष दे रहे हो, तुमने सर्वस्व त्याग किया किन्तु मेरे लिये नहीं । मैंने किस उद्देश्यसे तुमसे विवाह किया यह तो पहले ही कह दिया था—कुछ भी छिपाया नहीं । दोनोंने परस्पर भिन्न स्वार्थ से एक दूसरेका अवलम्बन किया था, किन्तु हम दोनों ही व्यर्थ हुए ।’

बहुत देर चुप रहकर हेमन्त बोला—‘तुम ठीक कहती हो हेममाला ! आत्म-मुखके लिये ही मैंने सब कुछ त्यागा है । तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं, तुम पहलेसे ही अपनी सत्य-मूर्तिको प्रकट करती आ रही हो, तुमने कपट नहीं किया । पुष्पिकाको मैंने सरल हृदयसे प्रेम किया था, उसका प्रतिदान न पानेसे अन्धा होकर एक पाषाणीके पास अपने दग्ध हृदयके लिये शान्ति-जलकी कामना की थी । किन्तु...तुमने ठीक कहा हेममाला मैं व्यर्थ हुआ हूँ !’

हेममाला अटल भावसे स्थिर रही, उसके मुंहपर जरा भी सिक्कुड़न न पड़ी ।

प्रस्तर मूर्तिकी तरह स्थिर श्वेत हेममालाकी देहकी ओर देख हेमन्त बोला—‘मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ हेममाला ! तुमने आज मेरा भ्रम दूर कर दिया । मगर जानती हो तुम क्यों व्यर्थ हुई हो ? मनुष्य प्रेम हो, अथवा ईश्वर प्रेम ; प्रेम-पात्रके प्रति सम्पूर्ण निर्भरताकी जरूरत होती है, प्रेमीके लिये कुछ भी छिपा रखना अविश्वास है । किन्तु तुम भी अपने

प्रेम-पात्रपर पूरे विश्वाससे निर्भर न रह सकीं। मेरी तरह तुम भी दूसरेकी साहाय्य प्रार्थिनी बनी हो, हम दोनोंको ही भ्रम हुआ, हम दोनों ही व्यर्थ हुए !

हेममालाके अटल अधिचलित मुखका भाव इस बार कुछ विचलित हुआ किन्तु उत्तरकी प्रतीक्षा न कर हेमन्त मन्दिरमें बाहर हो गया।

[६]

अस्तगामी सूर्यकी रक्त किरणोंसे रण क्षेत्र रंजित है। मृत-देहोंके ढेर लगे हैं, सेविकायें उन ढेरोंमें से आहतोंको खोज रही हैं।

एक सैनिक औंधा पड़ा पीड़ासे कराह रहा है। उसके कपड़े चिथड़ोंमें बदल गये हैं, रक्तसे सम्पूर्ण शरीर लथपथ है। उसे सीधा कर सेविका उसका मुख देख चौंक उठी, बोली—‘राजकुमार हेमन्त !! तुम—आज तुम्हारी यह दशा ?’

हेमन्तकी आंखोंसे उस समय संसारकी ज्योति स्तिमित हो रही थी, कानोंसे पार्थिव शब्द विलीन हो रहा था किन्तु पुष्पिकाका शब्द सुनते ही जैसे प्राणोंमें अमृतका संचार हुआ हो। अस्फुट कण्ठसे हेमन्त बोले—‘पुष्पिका ! ओः पुष्पिका तुम ? तो भगवानने मुक्त भाग्यहीनकी प्रार्थना सुन ली ? अब मैं सुख पूर्वक मर सकूंगा।’

व्याकुल होकर पुष्पिका बोली—‘नहीं-नहीं, मैं तुम्हें मरने नहीं दूंगी ! तुम बोलो मत, देखूं, घावोंपर पट्टी बांध दूं।’

हेमन्तने कहा—‘पुष्पिका ! मैं तुम्हें कितना प्यार करता था—ओफ ! मेरा अन्तिम निःश्वास यही कहना चाहता है। किन्तु पुष्पिका ! मैं तुम्हारे और देशके निकट विश्वास-घातक हूँ। प्रेममें तुम्हें कभी विश्वास

सौगात

नहीं रहा, और मेरी विश्वास-घातकृताने तुम्हारे उस अविश्वासको और भी बढ़ा दिया। किन्तु मनुष्यका वाह्य आचरण ही क्या हर वक्त आन्तरिक तथ्यको प्रकाश करता है? आज मृत्युसे क्षणभर पहले जो भगवानने मुझे तुम्हारे हाथोंमें सौंपा है इसीसे क्या प्रेमकी सत्यता प्रमाणित नहीं होती?’

पुष्पिका आत्म-संवरण न कर सकी, आंखोंसे आंसुओंकी झड़ी लग गई, कुछ देर बाद उसने हेमन्तके मुखपर नजर डाली, देखा उनका जीवन दीप निर्वाणोन्मुख हो रहा है। किन्तु अपने निष्प्रभ आंखोंकी समस्त शक्तिको बटोर वह पुष्पिकाकी ओर एकटक देखता हुआ जैसे कुछ सुननेकी अपेक्षा कर रहा हो।

पुष्पिका भूल गई कि वह सेविका है, भिक्षुणी है! वह भूल गई कि सांसारिक ममतामें डूबना भिक्षुणीके लिये पाप है !!

वह हेमन्तके मृत्यु-विवर्ण ओठोंको बार-बार चूमने लगी, रुद्ध आंसुओंसे व्याकुल कण्ठस्वरमें बोली—‘नहीं हेमन्त! अब अस्वीकार नहीं कर सकती, प्रेम सत्य और पवित्र है। बाहरी आचरणों पर विचार करनेसे बड़ी भारी अविवेचना होती है, सुनो हेमन्त! मैं स्वीकार करती हूँ—मैं तुमसे प्रेम करती हूँ और तुम्हारे प्रेमपर अपने सर्वान्तःकरणसे विश्वास करती हूँ।’

रणक्षेत्रसे सूर्यका म्लान आलोक बुझ रहा था किन्तु मरते हुए हेमन्तका मुख अपूर्व स्वर्गीय आलोकसे उज्ज्वल हो रहा था !

जुलाई १९३६

लाकेट

मनोरमा यह अच्छी तरह जानती थी कि आधुनिकयुगमें एक लड़कीको जीवन-संगिनी बननेके लिए उसमें किन-किन गुणोंका होना जरूरी है। और चाहे कुछ भी न हो लड़कीका रूप-रंग तो सबसे पहले देखा जाता है। मनोरमाको देखकर उसे जहां एकदम कुरूपा नहीं कहा जा सकता था, वहां उसके रूप और रंगपर कोई मोहित हो जाय ऐसी भी बात नहीं थी। उसके श्याम वर्ण चेहरेपर दो बड़ी-बड़ी काली आंखें वास्तवमें आकर्षणकी चीज थीं, किन्तु यह आकर्षण भी इतना तीव्र नहीं था कि आंखें चार होते ही कोई उसकी ओर देखता हं रह जाय।

दूसरी जो इससे बड़ी कमी मनोरमामें थी वह उसका अनपढ़ होना था। सौन्दर्यकी कमीको शिक्षाके माधुर्यसे दबाया जा सकता था, किन्तु एक सौन्दर्य-हीन युवतीके लिए अशिक्षाके भारसे दबा रहना कितना दुःख और कष्टकर है इसे भी मनोरमा कुछ-कुछ समझने लगी थी और यह भी इसलिए कि वह एक गरीब परिवारमें पैदा हुई थी जो उसकी शादीके लिए प्राणपण चेष्टा करके भी हार चुके थे, किन्तु उन्हें वर न मिल सका था।

सौगात

मैंने जब यह बात अपने डाक्टरी क्लासके सहपाठी सुरेशकी माके मुंहसे सुनी, तभी मेरा ध्यान मनोरमाकी तरफ भुका और उसकी आंखोंसे मुझे आकर्षित हो जाना पड़ा ।

मैं कई महीनोंसे सुरेशके यहां आया-जाया करता था और मनोरमा मुझे कई बार खाना और चाय पिला चुकी थी ।

उस दिन मैंने मनोरमाको अकेली पा उससे पूछ ही लिया—

‘तो क्या तुम इसी तरह अनपढ़ मूर्ख ही बनी रहकर अपना जीवन बिता डालना चाहती हो, तुम्हें शादीके लिये जितनी फिक्र है अगर कहीं पढ़नेकी होती तो तुम न जाने आज क्या हो जातीं ?’

वह बोली—‘चाहें तो आप भी दिल्लीगी उड़ा सकते हैं, मेरा ही दिल जानता है कि मैं कुछ सीख जानेके लिये कितनी उतावली हूँ, मगर क्या करूं कौन पढ़ाता है । आप मांसे कह देते तो शायद वह.....’

मैंने कहा—‘मांसे कहना क्या बड़ी बात है, मैं आज ही कहता हूँ और कल ही तुम्हें स्कूलमें भर्ती करा आऊंगा ।’

चाय समाप्त होनेपर मैं रोग शय्यागत मनोरमाकी मांके पास गया । जाते ही मैंने यही सिलसिला छोड़ा ।

मैंने कहा—‘माताजी ! सुरेश तो मनोरमाके बारेमें सोचता ही नहीं, मगर देखता हूँ आप भी उसकी तरफसे लापरवाह हैं । आप क्या यह चाहती हैं कि मनोरमा आजके जमानेमें भी अनपढ़ मूर्ख ही बनी रहे ?’

सुरेशकी माने मेरा हाथ अपने हाथोंमें ले लिया और बड़े ही धीरे भावसे कहा—‘बेटा महेश ! क्या मैं नहीं जानती इस छोकरीके भागमें

कितने दुःख बदे हैं। एक तो वैस ही काली है, उस पर अनपढ़। मगर देख तो रहे हो मेरी यह दशा है। बारह वर्ष हो गये जब इसके बापू स्वर्ग सिधारे थे; तबसे अबतक किसी तरह घरका खर्चा चलाया, लड़केको किसी तरह यहां तक पहुँचाया, मुझपे भला क्या-क्या हो सकता था, तुम्हीं कहो ?'

मैंने देखा सुरेशकी माँके आँसू टुलक पड़े। मैंने क्षणभर निर्वाक रहनेके बाद कहा—'माँजी ! उसे अभी भी थोड़ा-बहुत पढ़ लेना चाहिये नहीं तो उसे जीवनमें बड़े संकटका सामना करना पड़ेगा। उसकी उम्र क्या अभी पढ़नेकी नहीं ?'

'बेटा—कहांसे पढ़ाऊँ ? सुरेशका खर्चा निकलना ही मुश्किल हो रहा है, और फिर अब वह चौदह वर्षकी हो गई है, शादी, शादी करके लोग अभीसे कान खाने लगे हैं। जानते तो हो, जवान लड़कीको घरमें रखनेके क्या माने होते हैं ?'

पंखा झलते हुए मैंने कहा—'खर्चेंकी चिन्ता न कीजिये, माँजी ! मैं उसे कल ही ब्राह्म महाविद्यालयमें भर्ती करा आऊँगा। अभी कमसे कम उसे दो वर्ष तो पढ़ाना ही होगा; लोगोंके कहनेकी भली चलाई।'।

इसी समय मनोरमा बहांपर आ पहुँची और माँके सिरपर हाथ रखते हुए बोली—'मैं पढ़ना चाहती हूँ, मैं अपना लाकेट बेचकर फीस का रुपया अदा कर दूँगी—महेश बाबू ! आप मुझे कल ले जाइयेगा तो स्कूलमें ?'

मैंने कहा—'हां-हां, जरूर ले जाऊँगा, लाकेट बेचनेकी जरूरत नहीं।'।

माताजीने कहा—'बेटा ! तुम क्यों इतना कष्ट करोगे। पहले ही

सौगात

हम तुम्हारे अहसानोंसे दबे हैं, सुरेश कहता था तुमने डाक्टरीकी बहुत सी जरूरी-जरूरी किताबें उसके लिये खरीदी हैं ?

‘मांजी ! भला लाईब्रेरीसे कबतक काम चल सकता है और फिर डाक्टरीकी किताबें तो ऐसी नहीं कि जिन्हें पढ़ा और फेंक दिया, वे तो हमेशा अपने पास रखनी होती हैं । मगर उसका मनोरमासे क्या मतलब, बस अब और कुछ भी मैं नहीं सुनूंगा । देखो मनोरमा ! कल तैयार रहना, मैं तुम्हें स्कूलमें भर्ती करा आऊंगा ।’

मनोरमाने हां के बदले सिर हिला दिया ।

माने कहा—‘जैसी तुम्हारी इच्छा !’ और फिर आंखें बन्दकर लीं ।

मैं जाने लगा । सीढ़ियां उतर कर बराभदेमें गया ही था कि मनोरमा पीछेसे आकर बोली—‘देखिये, इस लापेटको बिकवा दीजियेगा, कल स्कूलमें फीस देनी होगी न ?’

मैंने कुछ लुब्ध-सा होकर कहा—‘धत्, कल तैयार रहना । मैं सबेरे ही आ जाऊंगा ।’ और मैं बाहर चला गया ।

मनोरमा विस्मित हो वहींपर खड़ी देखती रही । बोर्डिङ्गमें आकर मुझे कुछ बेचैनी-सी महसूस होने लगी । वास्तवमें सुरेश कैसा लापरवाह व्यक्ति है । जब जानता है कि मनोरमामें आजकी दुनियांके लिये बड़ी भारी कमी है, सांसारिक दृष्टिसे उसे सुन्दरी कहा जानेका कोई हक नहीं ; फिर भी उसे पढ़ाया लिखाया नहीं । एक शिक्षा ही ऐसी चीज है जो उसके इस ईश्वर प्रदत्त दोषको छिपा सकती है । सुरेश निर्धन है, तो क्या हुआ । अपना भी तो गुजारा चला रहा है, उसे पढ़ानेमें खर्चा ही कितना लगता ?

मैंने अपने मनमें यह प्रतिज्ञा-सी कर ली, चाहे जो भी हो मनोरमा को प्रत्येक प्रकारकी शिक्षा दिलाऊंगा। वह आजकी दुनियांमें शिक्षा के लिहाजसे किसीसे पीछे न रहे। उसके सम्पूर्ण गुणोंका शिक्षाके माध्यम द्वारा प्रस्फुटित होना आवश्यक है। और मैं इस चिन्ताको इतनी अधिक शीघ्रतासे कार्यरूपमें परिणत हुआ देखना चाहता था कि मैं स्वयं सोच न सका कि क्या करूं। दूसरे दिन मैं सुरेशके घर गया। देखा, मनोरमा तैयार बैठी मेरी राह देख रही है, किन्तु सुरेशने कहा—‘आखिर तुम्हारी क्या मर्जी है?’

‘बस सिर्फ एक कप चाय।’

दूरपर खड़ी मनोरमा मुस्का दी

‘एक कप चाय मनोरमा!’ सुरेशने कहा।

‘दो कप चाय प्लीज’ मैंने कहा।

मनोरमा चाय लाने चली गई।

सुरेशने कहा—‘भाई महेश’

मैंने कहा—‘मैं जानता हूँ जो आप फर्माना चाहते हैं। अपना उपदेश अब अपने पास ही रखिये। आखिर तुमने मनोरमाके बारेमें कभी सोचनेकी तकलीफ भी की?’

‘सोचकर करता भी क्या? देख तो रहे ही हो यहांकी दशा!’

‘तो फिर अब क्यों रोकते हो?’

‘मुझे सूझ नहीं पड़ता, तुम्हारे अहसानोंका बदला कभी दे सकूंगा या नहीं?’

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि मनोरमा चाय लेकर आ गई।

सौगात

चाय पीकर मैंने मनोरमाको साथ लिया और चल पड़ा ।

कुछ दूर जाते ही मनोरमा लाकेट मेरे हाथमें देते हुए बोली—
‘इसे ले लीबिए न !’

‘बड़ी जिद्दी हो तुम मनोरमा !’ मेरे मुंहसे निकला ।

वह बोली—‘आप भी तो वैसे ही हैं !’

मैंने कहा—‘मुझे तुम्हारी इस जिदसे बड़ी तकलीफ हो रही है ।
इससे तो अच्छा होता कि तुम लोगोंसे परिचय ही न होता ।’ मनोरमा
चुप रही, मैं भी चुप रहा ।

‘आपको कष्ट हुआ ?’ मनोरमाने निस्तब्धता भंग की ।

वह पुनः बोली—‘आप नाराज न होइये । मेरे भाग बड़े ही मन्द
हैं मदेश बाबू ! ईश्वरने मुझे दूसरोंको दुःख देने ही भेजा है, नहीं तो
कहांसे आप आकर मेरे लिए परेशान हो रहे हैं ?’ मैं चुप रहा ।

वही फिर बोली—‘आपको मैंने कष्ट दिया, मुझे क्षमा न करेंगे,
क्या मैं इस लायक भी नहीं ?’

‘और तुमने तो मुझे बहुत कुछके लायक समझा है न ?’ मैंने
अभिमानके स्वरमें कहा ।

वह बोली—‘अच्छा लाइये, लाकेट अपने हाथसे मेरे गलेमें बांध
दीजिये । आगेसे कभी ऐसा न करूंगी !’

मैंने लाकेट मनोरमाके गलेमें बांध दिया । उसे छूते ही मेरे सारे
शरीरमें एक कम्पन छा गया, उसकी हारने मुझे हमेशाके लिए परवश
बना दिया । वह बोली — ‘मैं आज सबसे अधिक सौभाग्य-
शाली हूँ ।’

मैंने कहा—‘क्यों ?’ वह चुप रही, उसके चेहरेपर मानो तल्लीनता की मुस्कराहट थी !

(२)

मनोरमाको स्कूलमें पढ़ते हुए एक वर्ष हो गया । वह पढ़ने लिखने के अलावा सीना, काढ़ना और बुनना आदि कामोंको भी अच्छी तरह सीख गई थी । सुरेश भी अब उसे विशेष रूपसे पढ़ाने लगा था, मनोरमा भी पढ़ने-लिखनेमें आलस न करती । अपनी बुद्धिकी तीव्रताके कारण वह अति शीघ्रतासे प्रत्येक विषयको हृदयंगम कर लेती ।

पक्षोंकी मनोरमा और आजकी मनोरमामें काफी अन्तर था । अब उससे बात करके किसी भी सभ्य परिवारको उसपर लोभ हो सकता था । मनोरमाकी मां भी अब उसके लिए वर खोजनेमें आजकल थोड़ी बहुत निश्चिन्त रहने लगी । तिसपर उनकी शारीरिक अवस्था अत्यन्त ही शोचनीय थी । यह सब सोचनेकी सामर्थ्य भी उनमें नहीं थी ।

किन्तु एक दिन सन्ध्या समय सुरेशकी एक चिट्ठि मुझे मिली, जिसमें लिखा था— ‘मां अब जाने ही वाली हैं, जल्दी ही चले आओ ।’

मैं घबराया हुआ वहां पहुँचा । सुरेशकी माताकी अवस्था अब तब हो रही थी । मुझे देखते ही उन्होंने मनोरमाका हाथ मेरे हाथमें दे दिया । उन्होंने कुछ कहा भी, किन्तु मैं समझ न सका, उनकी आवाज गड़गड़ा गई थी । मेरे हृदयकी अवस्था एक अवर्णनीय विचार-धाराकी नुकीली कीलपर चक्कर काटने लगी ।

कुछ क्षण हम लोग इसी अवस्थामें रहे ।

सुरेशकी मांका देहान्त हो गया ।

सौगात

उन दोनों भाई-बहनोंके साथ-साथ मैं भी कुछ दिनोंके लिए शोक-सागरमें डूब गया । मैं भी उन्हें अपना ही समझने लगा था । किन्तु सुरेशकी माताजीका अन्तिम आदेश रह-रहकर मुझे आघात पहुँचा रहा था । मैं सोच भी न सका सुरेशको क्या कहूँ और कैसे समझाऊँ । और उसे यदि मैं समझा भी सका, तो मनोरमा ! वह अपने जीवनसे भी बढ़कर मुझे चाहती है । यद्यपि मैंने कभी भी उसे अपने मनसे पत्नी बनानेकी कल्पना नहीं की, कभी उसे वचन भी नहीं दिया, फिर भी वह तो समझेगी कि मैंने उसे धोखा दिया और स्वर्गमें बैठी उसकी मांकी आत्मा क्या कहेगी ?...उनके प्रति भी मेरा कोई कर्तव्य है । मैं उनकी अवहेलना नहीं कर सकता । सुरेश नाराज हो तो हो, मनोरमा दुखी हो तो हो, अपने भविष्यके लिये मुझे स्वयं सोचना चाहिये ।

इन्हीं सब विचारोंमें मैं डूबा हुआ था कि सुरेश मेरे पास आकर बोला—‘मदेश ! अब तुम चाहो तो मनोरमासे विवाह कर सकते हो, उसे अपने यहां ले जा सकते हो । वह यहांसे ज्यादा सुखी तुम्हारे घर पर ही रहेगी । मेरा भी अब रिजल्ट निकलने ही वाला है देखो, अगर सफलता मिली तो...

मैंने कहा—‘सुरेश ! मैं कई दिनोंसे तुमसे कुछ कहनेको सोच रहा था । तुम जानते हो तुम अपने घरमें जितने स्वाधीन हो, मैं अपने घरमें उतना नहीं । मुझे अपने मां-बापकी मर्जीके खिलाफ चलनेका कोई अधिकार ही नहीं । अगर बहुत-कुछ न कहकर मैं एक ही बातमें यह कह दूँ कि मेरे मां-बाप मनोरमासे मेरी शादीको कभी भी मंजूर नहीं करेंगे तो तुम्हें कुछ कहनेको है ?’

सुरेश जैसे आकाशसे गिर पड़ा हो। बहुत देर तक वह मेरे मुख पर नजर गड़ाये रहा। उसकी दृष्टिमें एक असीम आश्चर्य था।

वह कुछ न कहकर चुपचाप उठ बैठा और जानेको उद्यत हुआ।

मैंने कहा—‘अरे कहां जाते हो, क्या हुआ, बिना कहे ही उठ बैठे ?’

वह बोला—‘महेश ! अब मेरे बुरे दिन आये हैं मैं जाता हूँ !’ कहकर वह चला ही गया।

बैठा-बैठा मैं चिन्ताओंके सागरमें डूबने-उतराने लगा।

परिस्थितियां स्वयं ही अपने आपको सम्भाल लेती हैं। रिजल्टमें सुरेशके साथ मैंने भी सफलता प्राप्त की, किन्तु मैंने सुरेशको दो लाइन लिखकर उसके पास होनेकी खुशी प्रदर्शित करना भी उचित न समझा।



विशेषज्ञता प्राप्त करनेके लिये मैं जर्मनी चला गया और वहां जाते ही कुछ ही दिनमें सुरेश तथा मनोरमाको एक प्रकारसे भूल ही बैठा।

पूरे सात वर्ष बाद जब मैं स्वदेश लौटा तो मुझे इसका गुमान भी नहीं था कि किसी माताने मरते वक्त अपनी श्यामवर्ण लड़कीका हाथ मेरे हाथोंमें थमाया था।

मैं क्षयरोगका विशेषज्ञ था और इसीलिये सरकारने मुझे कलकत्तेके सरकारी टी० बी० सिनेटोरियमका प्रधान चिकित्सक बनाकर वहां भेजा था। मैंने दूम्रे दिन ही सिनेटोरियमके सभी रोगियोंको एक-एक करके परीक्षा करना आरम्भ किया, किन्तु जब मैं तीन नम्बर कमरेकी रोगिणी युवती की परीक्षा कर रहा था तो वह एकाएक चिल्ला उठी—‘महेश बाबू !’

सौगात

मैंने आश्चर्यसे रोगीके चेहरे पर दृष्टि डाली, भयंकर काली सूरतमें मुझे कुछ पता न मिला कि रोगिणी मुझसे कैसे परिचित है ।

मैंने कहा—‘आप कौन हैं ?’

वह बोली—‘मनोरमा !’

मेरा सम्पूर्ण शरीर कांप उठा ।

‘मनोरमा !’ मेरे मुखसे निकला—‘तुम यहां ?’

‘हां ! जरा पास आइये डाक्टर साहेब, आपसे एक काम है ।’

मनोरमा अपने गलेसे लाकेट निकाल कर मुझे देती हुई बोली—
‘यह लीजिये ।’

‘क्यों ?’ मैंने कहा ।

‘मैं अब जिन्दा नहीं रह सकती, परीक्षा करना व्यर्थ है । अब आप जा सकते हैं ।’

मनोरमाने लाकेट मेरे हाथमें दे दिया ।

मैंने कहा—‘यह क्या है ?’

वह बोली—‘आपने इसे मेरे गलेमें पहनाया था न । यदि न पहनाते तो अच्छा होता ; मुझे इतनी देर प्रतीक्षा न करनी पड़ती ।’

मैं खोया हुआ-सा बाहर निकल आया, बिना रोगीकी परीक्षा किये ही ।

मैंसे प्राणपनसे मनोरमाको धन्यानेकी चेष्टा की । अपनी विशेषज्ञता का सम्पूर्ण परिचय दिया, किन्तु वह न बच सकी । मुझे आजीवन तरसानेके लिये वह अपना लाकेट मेरे पास छोड़ गई । मेरा दिल नहीं चाहता कि मैं उस लाकेटको कभी अपनेसे अलग करूं ।

पूर्णिमा

‘नहीं, नहीं, नहीं ।’ कुछ उत्तेजनाके स्वरमें कुंवर बोली ।

‘मगर क्यों ? नहीं-नहींका तो कोई मानी नहीं होता । बड़ी तुम हो गई हो, पढ़ा लिखा तुम्हें लिया है, अब शादी करो और अपना घर-बार संभालो, हमारा जो कर्तव्य था, हमने पूरा कर लिया है ; अब तुम्हारी शादी कर देना बाकी है, फिर तुम जानो और तुम्हारा काम !’ कुछ चिढ़ते-से मिजाजसे कुंवरकी माने कहा ।

‘मां, मैं एक बार नहीं, हजार बार कह चुकी हूँ, मुझे शादी नहीं करनी, किसीका गुलाम नहीं बनना, मैं शादी नहीं करूंगी, चाहे इधरकी दुनिया उबर हो जाय । तुम लोग अगर अपने घरमें रखनेके लिए भी घबराते हो, तो मैं चली जाऊंगी, नौकरी कहीं कर लूंगी, अपने रहने-खानेका गुजारा चला लूंगी—तुम लोगोंको मेरी चिन्ता न करनी होगी !’ कुंवर पिछली ही जिदमें बोल बैठी ।

किन्तु मांका स्वर कुछ, धीमा पड़ा, कुछ सहानुभूति-सने शब्दोंमें उन्होंने कहा —‘बेटी कुंवर! तू हम लोगोंको इम बुरी तरहसे क्यों डांटती-फटकारती रहती है, हम क्या तेरे बुरेके लिए कहते हैं ?’

सौगात

कुछ अभिमानका स्वर लिये कुंवर बोली—‘पर मेरे भलेके लिए तुम लोगोंको इतनी चिन्ता क्यों ? मैं भी तो अपना भला-बुरा सोच सकती हूँ !’

‘तू हमारी कोखसे जन्मी है, लक्ष्मी जैसे गुण तुझमें हैं, जिस घरमें पैर रखेगी, उसे राजभवन बना लेगी, तेरा भला होगा, माता-पिताका नाम रौशन होगा, क्या इससे हमें खुशी न होगी ?’ बड़ी मीठी आवाजमें माने उत्तर दिया ।

अब कुंवरके स्वरमें कुछ गम्भीरता आ गई थी, वह बोली—‘मगर मेरा विश्वास है मां, मेरी शादी क्या होगी, मेरा जीवन बग़्वाद होगा ; जिस कामसे मेरी दिली नफरत है, उससे मेरा कैसे भला होगा ? क्या तुम यह चाहती हो कि मैं किसी एकके पीछे रहकर अपनी सारी खुशियों का, अपनी तमाम जिन्दगीके अरमानोंका बलिदान कर दूँ ? मेरा दिल कभी भी यह नहीं चाहता । अगर मनको मारकर तुम लोगोंकी बात मान भी लूँ, तो जिन्दगी-भर अपने साथ-साथ तुम लोगोंको भी सताती रहूँगी । यह ब्याह-शार्दीका भंभट एक व्यर्थका भंभट है । आदमी अकेला आया है, अकेला जायेगा ; फिर किसीपर किसीका प्रभुत्व कैसा, हुकूमत कैसी ? एक लड़की पैदा हुई है तो अपने लिए, मरेगी भी तो अपने लिए ; फिर वह अपनी अमूल्य जिन्दगीको सिर्फ दो दिनके लिए किसीके हवाले क्यों कर दे ? ईश्वरने किसीको गुलाम और किसीको मालिक तो बनाया नहीं, फिर यह पाखण्ड और धूर्तता नहीं तो और क्या है, और जब मैं इसे समझ गई हूँ, तो क्यों न स्वयं संभल जाऊँ ?’

हारकर जैसे माने कहा—‘मांके हृदयकी छिपी व्यथाको कैसे समझाऊँ

कुंवर ! तेरी मर्जी रही, मैं क्या कहूँ—मगर इस तरह क्या तू सुखी रह सकती है ?

‘क्यों नहीं, ज्यादा सुखी !’

मां-बेटीकी बातोंके बीच ‘मां-मां’ कहती हुई पूर्णिमा कमरेमें प्रविष्ट होते ही दोनोंके चेहरेकी उदासीको देख चुप रह गई, वह समझ न सकी कि क्या करे, पहले इनकी उदासीका कारण जाने या अपने सबसे प्यारे हरीश भैयाके आज एकायक आनेकी खबर सुनाये !

मां पूनमकी खुशीको अपनी उदासीसे दबा नहीं देना चाहती थीं, माताका हृदय लड़कीके खिले चेहरेको देखते ही खिल गया, बोलीं—
‘क्या है बेटी पूनम ?’

कुंवर बड़ी थी, पूर्णिमा छोटी । कुंवर कुछ सुश्रू-मिजाज, पूनम कुछ रसीली । जहां कुंवर माता-पिताकी बातोंको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा करती थी, वहां पूनम कुछ उपेक्षाशील, कुछ लापरवाह, कुछ भावनाओंकी दुनियामें निपटने, कभी कभी अकेली बैठी आसुओंसे खेलने और शायद किसीके हृदयमें कुछ टटोलनेवाली और कुछ पा जानेमें उसकी छान बीनमें व्यस्त रहनेवाली थी ; और कुंवर माता-पिताकी आज्ञाको बिना किसी हाना के स्वीकार करने और अपने घरकी ही दिनचर्यामें व्यस्त रहनेवाली थी । बात यह थी, परिस्थितिने दोनोंको दो तरहका बना दिया था । कुंवर यूनिवर्सिटीकी परीक्षाओंमें व्यस्त रहती और उनमें सफलता पाती और जीवनके हर काममें वह उसी तरहकी सफलताओंके लिए व्यस्त रहा करती । कालेजके साथियोंके तीखे व्यवहारने उसे पुरुष जातिसे घृणा करनेवाली बना दिया था, इसीलिए

सौगात

वह अपने माता-पिता की किसी बात को अगर आज कई महीनों से टालती आ रही थी, तो वह यही कि वह किसी पुरुष को अपना साथी बना ले — जीवन का साथी । आज भी मां हार गई थी, पर वह ब्याह के लिए राजी न हो सकी ।

पूनम किन्तु छोटी होने पर अपनी मां की लाइली जबादा थी, पूर्णिमा कहकर मां उसका कभी-कभी सिर सोहलाया करती । उसने मां से सुन लिया था, अब वह बड़ी हो गयी है, जबादा खेल-कूद अब अच्छा नहीं, और जब वह अपने हरीश भैया को बड़े उत्साह से मां से मिलाने ला रही थी, तो वह वास्तव में यह भूल गयी थी कि वह बड़ी हो गयी है, हरीश को वह समझती ही ऐसा कुछ थी, जिसे देखते ही वह सब कुछ भूल जाती थी । मां के दुलार को पाते ही वह उसी उत्साह से बोल उठी ।

‘मां, हरीश भैया आये हैं, जरा देखो न बाहर खड़े हैं !’ दोनों बाहर आये, हरीश को दिखाकर बोली—‘मां, जरा पूछो न इन्हें, आज तक क्यों नहीं आये ?’

‘अरे हरी ! तू तो ईद का चांद हो गया है रे, क्या हुआ ? मैं देख रही हूँ, आज तू पूरे तीन साल बाद आ रहा है ।’ मां ने हरीश को भेंटते हुए कहा ।

कुछ उपेक्षा के-से स्वर में हरीश बोला—‘काम में लग गया था मांजी, फुर्सत ही नहीं मिली, कुछ दिन के लिये बाहर गया था, अभी आया हूँ ।’

‘अच्छा तू बैठ, मैं अभी आई ।’ कहकर मां एक ओर चली गयी, कुंवर लाल को बिठाती हुई बोली—

‘क्यों झूठ बोले ? अभी आये हैं, शक देखो म अभी आनेवालों की, जैसे कि सच ही बाहर गये थे ।’

‘अब अगर तुम्हें विश्वास न हो, तो मैं क्या करूँ और फिर मैं तुमसे बोल ही कब रहा हूँ ?’ कुछ रूखे भावसे बोला हरीश ! पूनम कुंवरकी कुर्सीपर सहारा रखकर वहीं पर खड़ी रही, कुछ बोली नहीं !

उसी तीक्ष्णतासे कुंवर बोली—‘तो मैं ही कब आपसे बोलने जा रही हूँ, बड़ी कीमती बातें हैं न आपकी, जिनका जवाब दिये बिना हमसे नहीं रहा जाता ।’

‘मैं कब कह रहा हूँ कि मेरी कीमती बातें हैं, कीमती बातें तो आप लोगोंकी होती हैं ।’ हरीशने चुटकी ली । कुंवर गुस्सेसे लाल हो गयी; बोली—

‘और नहीं तो क्या तुम लोगोंकी गन्दी-गन्दी बातें कीमती होंगी ? लड़कोंको अफ़स ही क्या होती है बातें करनेकी, बहुत हुआ तो किसी लड़कीके सामने अपने झूठे और तीन कौड़ीके प्रेमकी शेखी बघारने लग गये, इसके सिवा और तुम कर ही क्या सकते हो ?’

‘प्रेम कभी झूठा और तीन कौड़ीका नहीं होता कुंवर, तुम भूलती हो, हम लोग प्रेम करते हैं; लड़कियोंकी तरह प्रेमकी बातोंमें दूसरोंके जीवनसे खेला नहीं करते !’ और हरीशने एक सन्देह-भरी दृष्टि पूनमपर फेंकी । पूनम वहांसे बाहर चली गयी ।

कुंवर बोली—‘उंह, आपको ही तो सब कुछ पता है; प्रेम—प्रेम नहीं अपना सर पटकते हैं ! मुझे कोई मिले तो दिखाऊँ उसे प्रेमका मजा !’

सौगात

हरीश कुछ हल्का-सा हंस दिया, कुछ बोलना ही चाहता था कि प्लेटमें कुछ खाना लिये मां आते-आते जोलीं—

‘हां रे हरि ! बहू अच्छी है ?’

‘हां...अच्छी...ही हैं !’

‘मतलब ! क्यों, कोई खास बात है क्या ?’

‘न...हीं...’

‘तो इतना लम्बा होकर क्यों कहते हो ?’

‘लड़का हुआ है मां, लड़का ।’ पूनम बोल तो गयी, पर उसकी बोलीमें कुछ घरघराहट थी, आनन्दोल्लासकी खिलखिलाहट नहीं । हरीशने पूनमको देखा, वह चायका प्याला लिये आ रही थी, एक प्रगाढ़ लालिमा उसके गालोंपर थी ! माने पूछा—‘क्यों रे हरि सच ?’

‘लड़का तो नहीं, पर...’ हरि ढोल भी न पाया था कि,

‘लड़की हुई है !’ कहकर कुंवरने वाक्य समाप्त किया ।

‘लड़की हुई है ?’ विस्मय मांके हृदयमें कुछ अस्पष्ट-सा था ।

‘हां !’ हरीशने कहा नहीं, पर ‘हां’ के बदले केवल सिर हिला दिया ।

‘ठीक हुआ !’ एकाएक कुंवर बोल उठी ।

आश्चर्यसे सभीने उसकी ओर देखा, उसने और भी कहा ।

‘लड़की क्या हुई, जैसे कोई आफत आ गयी और लड़का ही होता तो कौन-सा तख्ता उलट लेता ?’

‘मगर तुम्हे बुरा ही क्यों लगता है ?’ माने पूछा ।

‘लड़के होते ही बुरे हैं ।’ जल्दीमें कुंवरने उत्तर दिया !

‘और लड़कियां तो सभी अच्छी होती हैं न ?’ माने पुनः पूछा ।

चायका घूंट पीने-पीते हरीश कभी कुंवर और कभी मांकी ओर देखता कुछ बोलता नहीं ! कुंवर बोली—

‘क्यों नहीं, लड़कियां लक्ष्मी होती हैं, शक्तिका अंश होती हैं ।’
टढ़ता उसके स्वरमें थी ।

कुछ मुस्कराकर हरीशने कहा—

‘मगर, इधर तो हाल ही उलटा है, जबसे वह हुई है, स्त्रीका हाल अब-तब हो रहा है । मालूम होता है...’ एकायक हरीशका स्वर कुछ गम्भीर हो गया, और लग्बी सांस लेकर वह बोला—‘वह लक्ष्मी सभीको लेकर ही रहेगी !’

‘बीमार है क्या तुम्हारी स्त्री, हरीश ?’ मांके मनमें एक शंका थी ।
‘बीमार क्या होंगी, दिन गिन रही हैं मां !’ हरीशने उदासीसे ही कहा ।

‘तब तो तुम्हें बड़ा कष्ट होगा, क्या बुखार होता है ?’ मांने कहा ।
वे कुछ गम्भीर बन गयीं ।

कुंवरने जैसे व्यंग किया, बोली—

‘बुखार न आयेगा, कुछ परवाह तो होती न होगी, बाबू साहब घूमते होंगे इधर-उधर, दवाका भी इन्तजाम है कि नहीं—पता नहीं !’

‘मुझसे ज्यादा भला कोई क्या इन्तजाम करेगा, दिन-रात टहलमें लगा रहता हूँ, मगर जितनी ज्यादा दवा होती है, बीमारी उतनी ही ज्यादा बढ़ती जाती है ?’ हरीशने मानो सच्चाईमें सब-कुछ कह दिया ।

पूनमने जैसे दिल्लगी की, बोली—

‘हां, हां, देखना कहीं आंसू न गिरने लगें !’

सौगात

कुंवरने भी इस दिल्लगीमें सहयोग दिया—उसने कहा ।

‘देखो न, रो तो रहे हैं !’

‘रोना इतना सहज नहीं कुंवर !’ अन्दर रोते हुए भी जैसे हरीशने मुस्करानेको चेष्टा की; पर वह असफल रहा । धीमी धीमी लालिमा उसके समस्त मुख-मण्डल पर छा गयी ! माथेपर पसीनेकी बूंदें झलकने लगीं !

माने कहा—

‘क्यों हरी ! खाने-पीनेका क्या इन्तजाम है रे, होटलमें ?’

‘नहीं, अपने आप बनाता हूँ; उस हीराके लिये सबसे बड़ी तवालत है, नहीं तो...’

‘नहीं तो उन्हें तो भूखा मारनेकी ही मर्जी थी न ?’ कुंवर बोली—
‘देखा मां, मैंने कहा था न, शादी करके स्त्रियोंको क्या-क्या मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, दूसरोकी लड़कीको पुरुष इसी तरह लाते हैं और उनका जीवन बरबाद करके खाने तकको नहीं पूछते और तुम मुझे कहती हो कि शादी करो—उंह, क्यों नहीं कह देती कि भूखी मरो ।’ अभिमानसे कुंवरका स्वर कुछ कर्कश हो गया था ।

‘तो सभी क्या मेरी ही तरह कंगाल हैं—भीतर भी और बाहर भी !’ हरीश बोल तो गया; पर उसने स्पष्ट देखा, पूनम उसकी ओर कुछ ऐसी भंगीसे देख रही है, जैसे उसे हरीशकी इस बातसे आघात-सा लगा हो, ऐसा आघात—जिस वह सहन करनेमें असमर्थ थी, मगर कुंवरने वातावरण दूसरा बना दिया, वह बोली—

‘मैं तो नहीं कहती कि तुम कंगाल हो !’

हरीशने जैसे इसे सुना ही नहीं, वह पिछली ही बातके सिलसिलेमें कहता गया !

‘और यह भी तो जरूरी नहीं कि तुम भी बीमार ही पड़ो ! और यह फिर किसने कहा, मैं उन्हें भूखों मारना चाहता था !’ इस बार वह आंगुओंको संभाल न सका, रुमाल उसने मुंहपर लगाया, शायद कोई देख न ले और किसीका लक्ष्य भी इस ओर न था; पर पूनमसे वह उन्हें न छिपा सका । पूनम बड़ी गम्भीरतासे एकटक उसी ओर देखती रही ! माने अनुभव किया, उसके हृदय पर कुछ आघात-सा लगा है, वे बोलों—

‘कुंवरकी बातोंमें न लगे हरीश, वह तुम्हें चिढ़ाती है बेटा !’ माने उसकी पीठ सहलाई, उसे खींचकर अपनी गोदमें उसका सिर ले लिया । उसी तरह पड़े-पड़े वह बोला—

‘यह तो संसारकी रीत ही है मांजी, जब तक एक रोता नहीं, दूसरेको हंसनेका मौका ही नहीं मिलता ।’ और वह खिन्नताके साथ ही उठ बैठा, वह खड़ा हो गया और धीरे-धीरे दरवाजेकी ओर मुड़ा, दरवाजेपर जाकर उसने कहा ।

‘मैं जाता हूँ ।’

और वह माके पीछेसे बुलानेपर भी न लौटा, जल्दीमें सीढ़ियां उतर कर चला गया । वह चला तो गया, किन्तु अपने अन्तिम वाक्यसे तीनों प्राणियोंको एक असहनीय उलझनमें डाल गया ।

जीवनकी मधुर कल्पना प्रेम है । मानव प्रेमका तपस्वी है—चिरन्तनसे ! स्त्री और पुरुष एक दूसरेके लिये उलझन बने रहे हैं, उलझे हुए संकटमय

सौगात

मार्ग । हम अपने प्रेमकी बातें प्रेमी द्वारा बड़े चावसे सुनते हैं, सुनाते हैं, लेकिन उसीके साथ एक अभाव है, एक खोखलापन,—वही खोखलापन कभी-कभी असह्य हो जाता है । किन्तु मानवी कमजोरी ही उस सबके लिये बाध्य है, विवश है ! मां सोचती थी, कुंवरने उसे चिढ़ाकर अच्छा नहीं किया । मनुष्य अपने अभावपर दूसरों द्वारा टीका-टिप्पणी नहीं सह सकता, यही उसका स्वभाव है, वह अपने घरपर आया है—आदर होना चाहिये, न हो तो दुत्कार तो न मिले ! मां कुंवरको कुछ कहना ही चाहती थीं, पर न बोलीं । पूनम कमरेमें न थी, कहीं और किसी कोनेमें बैठी आंसू बहा रही थी, कुछ अभिमानके, कुछ क्षोभके आंसू ; कितनी खुशामदीं पर, कितनी चिड़ियों पर वह आया था—उसका सबसे प्यारा साथी, पर वह अच्छी तरह देख भी न पायी कि उसे दुत्कार दिया; मगर वह इस क्षोभको किसपर निकाल सकती है, किससे कहे कि ऐसा क्यों हो गया ? बातका बतंगड़ हो जाता है—वह अच्छी तरह जानती है, और जानती है कि वह जल्द रुठ जाता है, अब फिर कभी न आयेगा—कभी उसे न देख पाऊंगी । वह अपमानित होकर गया है, और मेरे ही लिये, मैंने ही तो बिनतियां भेजी थीं कि वह एक बार आ जाय, और वह आया भी था और चला भी गया, अपमानका घूंट पीकर, पर क्या करे, किससे बदला ले ? एक बार उसकी इच्छा हुई दीदीसे खूब झगड़ा करे, प्रवृत्ति न हुई, शायद इसलिये कि उसके अपमानका उसे बदला लेना ही चाहिये—न आकर, इस घरमें पैर न रखकर ! संसारके सामने मनुष्य अब हार जाता है तो वह अपनी ही क्षति करने पर उतारू हो जाता है, हरीशके न आनेकी ही कल्पनासे पूनम फूट-फूटकर रो रही थी ।

किन्तु कुंवरके हृदयमें और ही एक सागर हिलोरें ले रहा था, वह सोच रही थी—हरीशका जीवन क्या सचमुच रोता जीवन है ? स्त्री बीमार है तो ठीक भी हो जायेगी, तो क्या किसी दूसरी चिन्तासे उसका जीवन दुःखमय हो गया है...प्रेमके सिवा इन युवकोंको और भला क्या चिन्ता हो सकती है, किसीको प्रेम करता होगा, नहीं तो स्त्रीका यह हाल क्यों होता ?.....कितने खुदगर्ज होते हैं ये पुरुष, अपने प्रेमके लिये दूसरोंका जीवन तक बर्बाद कर देनेमें नहीं हिचकते । और मां मुझे कहती है शादी करो—ऊं, और कुंवर एकाएक उठ बैठी, मांकी ओर एक बार देख बाहर चली गयी । दूसरे कमरेमें जाकर उसने देखा, पूनम रो रही है ! उसकी पीठपर हाथ फेरने हुए वह बोली ।

‘क्या हुआ रे पूनम !’

पूनम जल्दीमें आंखें पोंछने लगी । कुंवरको आश्चर्य हो रहा था, पर वह कुछ समझ-सी रही थी कि उसकी पूनम क्यों रो रही थी । कुंवर रूखे व्यवहारके लिये घर-भरमें प्रसिद्ध थी, पर पूनमके लिये वही रूखी कुंवर न जाने क्यों इतनी कोमल थी, वह उसे स्नेह भी करती थी और चाहती भी थी । अत्यन्त स्निग्धतासे वह फिर बोली—

‘क्यों रोती है रे ? क्या हुआ, क्या हरीश भैयाके लिये ?’

इसी वक्त पूनमने अपना सिर कुंवरके हृदयसे लगा लिया और फूट-फूटकर रोने लगी । कुंवर उसके सिरपर हाथ रखकर उसके अन्त-स्तल तक टटोलनेकी कोशिश करने लगी ! एक बात, दो-बात और न जाने कितनी बातें उसकी आंखोंके सामनेसे एक साथ गुजर गयीं । पूरिमाकी एक और ही मूर्ति उसकी आंखोंमें नाचने लग गयी ! दिन

सौगात

भर बैठी-बैठी वह क्या जाने क्या-क्या सोचती रहती है, यही प्रश्न उसके दिमागमें आज तक चक्कर काटा करता था, पर आज वह समझ गयी कि वास्तवमें बात क्या है। कुंवर चुपचाप पूनमसे छूटकर बाहर चली गयी। छुतपर जाकर वह बाजारकी तरफ देखने लगी।

वह बाजार देख रही थी, पर हृदय और दिमागमें उसकी आंखोंकी तस्वीरोंके साथ कई चित्र चक्कर काटने लगे। वह सोचने लगी, क्या मैं हरीशके यहां जाऊं और इन दोनोंका जीवन सफल बनानेके लिये पूर्णिमाको उसके हाथमें सौंप आऊं ? मगर नहीं, यह अन्याय है, उसकी स्त्री है, बच्ची है...हां, उसकी बच्ची है हीरा, स्त्री बीमार है, बीमार ही नहीं, मृत्यु-शय्यापर है, बेचारी हीराका क्या होता होगा, कौन उसकी सम्भाल करता होगा ? समयपर खिलाना-पिलाना, समयपर नहाना-धोना, उसे भूख लगती होगी, कौन उसे पूछता होगा ? हम उसे जानते हैं, न भी जानते, तो भी मनुष्यताका तकाजा तो है, हमारा फर्ज तो है, उसकी इस मौकेपर सहायता करना ! कोरा फर्ज ही नहीं, देखकर चुप भी तो नहीं रहा जाता। मैं कल जाऊंगी, बच्चीको देख आऊंगी ! तकलीफमें होगी, तो अपने साथ ले आऊंगी।

×

×

×

×

फूलकी सुगन्ध पत्थरमें भी अपनी सुवास भर देती है। हरीशकी अढ़ाई वर्षकी बच्ची हीराने पत्थर-हृदय कुंवरके मनमें एक अद्भुत, किन्तु कोमल रसकी उत्पत्ति कर दी थी। उसके घरमें जाकर कुंवरने देखा कि हीरा फूल-जैसी कोमल और सुन्दर बच्ची धूलमें सनी है, कपड़े मैले-कुचैले, पैरोंमें बिवाइयां पड़ी हैं ! सारा घर मैला-कुचैला, जगह-जगह

चीजें बिखरी हुईं और सिगरेटके अघजले टुकड़ोंसे कमरा छाया हुआ है और उनमेंसे एक टुकड़ा हीरा हाथमें लेकर अपने मुंहमें डाल रही है और अजीब घृणासे थूक रही है ! मोटी-मोटी किताबोंके ऊपर मानो वर्षोंकी धूल जमा हो, मेज शायद कभी भी साफ नहीं हुई होगी, पुस्तकोंके ऊपर कपड़े रखे हैं, टूट्टों और चमड़ेके सूटकेसोंके ऊपर गीले तौलिये रखे हैं । एक अजीब-सी दुर्गन्ध घरकी सारी हवाको विषैली किये दे रही है ! चायकी भींगी पत्तियां एक ओर पड़ी हैं, जिनसे अभी तक पानी निकलता हुआ नीचेकी ओर टपक रहा है ।

नाकपर रुमाल दबाकर कुंवर दूसरे कमरेमें गयी । देखा, हरीश स्त्रीकी चारपाईके पास खड़ा कुछ पूछ रहा है । धोतीके छोरसे कमर कसी और कोयलोंसे हाथ काले, पास ही अंगीठी पर कुछ चढ़ा हुआ है, धीरेसे वह बोली—‘भैया !’

कुछ परेशान-सा चेहरा उसने पीछेकी ओर फिराया, जिसे एक गम्भीर हास्यमें बदलते हुए वह बोला ।

‘अरे कुंवर, तुम कब आयी ? और कोई है ?’

‘नौकर है ।’

‘पूर्णिमा नहीं आयी ?’ टाल-मटोलके भावमें हरीशने कहा ।

‘नहीं ।’

‘इन गन्दे घरोंमें आनेको शायद उसका दिल नहीं चाहा, क्यों !’

‘मगर मैं पूछती हूँ, इन गन्दे घरोंमें रहकर ही तुम लोग अपनी शान समझते हो, आखिर एक नौकर रखनेमें क्या लगता है ? बेचारी भाभी यहां बीमार न होगी, तो क्या होगी—नरक-कुण्ड बना हुआ है !’

सौगात

उस बच्चीका सत्यानाश न होगा तो क्या होगा, सिगरेटके टुकड़ोंको उठाकर चबा रही हैं, कितनी गन्दी बनी हुई है !' चिढ़ते हुए कुंवर बोली ।

चारपाईपर उठते-उठते हरीशकी स्त्रीने कहा—'यह सब मेरा ही दुर्भाग्य है बहन ! बैठ जाओ !.....आज मेरी यह हालत न होती, तो इस घरका सत्यानाश न होता; पर क्या करूं ?' वह रोने लगी !

'तुम्हारा क्या कसूर भाभी ! तुम क्या जान-बूझकर बीमार बनी हो, यह सब तो इनका कसूर है ।' कुंवरने कहा ।

हरीश चुप था, चुप ही रहा ।

अभिमान-मिश्रित स्वरमें कुंवर फिर बोली—'भैया, मैं हीराको अपने साथ लिये जा रही हूँ, तुमसे उसकी परवाह न हो सकेगी ।'

हरीशका मुंह अब खुला । वह बोला—'हम मरें, चाहे बचें, तुम्हें इससे क्या लेना ?'

'लेना-देना कुछ नहीं, पर थोड़ी-सी तुम्हारी मुश्किल तो आसान हो जायेगी ।'

'तुम लोग किसीकी मुश्किल आसान नहीं कर सकतीं, मुश्किलें बढ़ा जरूर सकती हो !'

'मालूम होता है, तुम लोगोंका दिमाग हमेशा ही खराब रहता है ?'

'और वह तुम लोगोंने किया !'

'क्या पागलोंकी तरह बक रहे हो, किसीसे बोलनेकी भी तमीज नहीं !'

'बात यह है कि अभी यह सब बड़ी बड़ी बातें तुमसे सीखनी हैं !'

कुंवर कुछ बोली नहीं; पर क्रुद्ध होकर अकेली वहांसे चल दी।

किन्तु हीराकी करुण-कङ्काल मूर्तिको न भुला सकी!

मनुष्यके जीवनमें इस कोमलताकी कमजोरीको शायद अभिशापके रूपमें भर दिया गया है! कुंवरके हृदयमें हीराकी कङ्काल मूर्तिकी कोमलताने एक भीषण भंकार पैदा कर दी थी, इस कमजोरीसे वह हार खानेको तैयार थी, इस कोमलताने जैसे उसके कानमें चुपचाप कह दिया हो, और कुछ हो न हो, तुम्हारा कर्तव्य है। और वह इस कर्तव्यके नामपर थर्रा गयी, पूर्णिमाका फिर क्या होगा, वह तो उसे प्राणोंसे चाहती है, अपनी स्नेही बहनको धोखा.....और उसका सिर चकराने लगा! रात सामने घूम गयी। पीछेसे पूर्णिमाने पुकारा—

‘दीदी!’

‘वह इतना बेपरवाह नहीं हो सकता, जरूर उसे कोई कष्ट है; कोई मनकी पीड़ा—मैं उसका घर देख आयी हूँ, पूनम! उसके इस कष्टमें हमारा कर्तव्य है उसकी सहायता करना। मगर मैंने उसे सहायताके बदले कष्ट दिया। किन्तु वह भी तो मुझसे लड़ पड़ा था!’ एक सांसमें बिना कुछ सोचे-समझे कुंवरने कह दिया। पूनम एकटक आश्चर्यसे उसे देख रही थी, बोली—

‘क्या है जीजी! क्या कहती हो, भाभी कैसी है?’

‘कैसी क्या है, मृत्यु-शय्यापर पड़ी अन्तिम श्वासें ले रही है। कल जाना, उसे देख आना। मैं अब न जा सकूंगी?’

‘क्यों जीजी?’

‘उसने मेरा अपमान किया है!’

सौगात

‘कैसा अपमान ?’

‘कहता है हम मरें-बचें, तुम्हें क्या ? क्या हमें कुछ नहीं ? हां, हमें कुछ नहीं, वह मरें-बचें, हमें क्या, दुनियामें हजारों रोज मरते और बचते हैं, किस-किसके पीछे हम फिरेंगे ?’

कुंवरने देखा, पूर्णिमाकी आंखें डबडबा आयी हैं । बोली—

‘पूनम रोती हो, रोती क्यों हो, कल मेरे साथ चलना, दोनों ही जायेंगे !’

किन्तु दूसरे दिन वे न जा सके । एक-एक करके एक पख वाड़ा बीत गया; न कुंवर गयी, न पूनम और न दोनों । मगर एक दिन जब कुंवर हरीशके मकानपर पहुँची, तो वहाँका हाल देखकर आश्चर्य चकित रह गई । हरीश पत्नीकी मृत्युके कारण अशौचावस्थामें बैठा था । एकायक सहानुभूतिका एक भी शब्द उसके मुँहसे न निकला, अवाक् विस्मित नेत्रोंसे एकटक वह हरीशको देखती रही ।

‘आओ कुंवर !’ हरीशने उसे बैठनेका इशारा करते हुए कहा—

‘तुम उस दिन हीराको ले जातीं, तो कितना अच्छा होता; वह मां-मां करके....’ वह आगे न कह सका ।

‘कहाँ है बच्ची ?’ कुंवरका गला भर आया था । उसने पहले इधर-उधर देखा और फिर एक कोनेपर सोई बच्चीको उठाकर दूसरे कमरेमें चली गई । घरकी गन्दगी और बच्चीके मैले-कुंचैले कपड़ोंका ख्याल वह एकदम भूल गई ।

आसू पोंछकर हरीश भी दूसरे कमरेमें गया और देखा, कुंवर बच्ची को हृदयमें दबाये सिसक-सिसककर रो रही है । हीरा उठ गई है, न

रोती है, न मां-मां करके चिल्लाती है, बल्कि वह अपने नन्हे-नन्हे हाथोंसे कुंवरके गालोंपर पड़ते हुए आंसुओंको चुपचाप पोंछ रही है ! यह दृश्य हरीश न देख सका, वह भी रो पड़ा । एक कटोर हृदयाकी सहानुभूतिसे वह जबरन उस ओर खिंचता-सा जा रहा है और कबसे यह क्रम जारी है, वह खुद नहीं समझ पा रहा था ।

आहत पाते ही हीराने हरीशकी ओर देखा और झटपट कुंवरकी गोदसे उतरकर बोली—‘बाबू ! बाबू ! ये रोती हैं !’

मगर बाबू भी तो अपने आंसू न छिपा पाया था । हीरा उसे भी देखकर बोली—‘हैं ! बाबू भी रोते हैं ।’

हरीश हीराको गोदीमें लेने ही वाला था कि कुंवरने आकर उसे फिरसे गोदमें उठा लिया, फिरसे छातीसे चिपका लिया और वह आंचल से आंसू पोंछने लगी । हरीश बोला—‘कुंवर क्यों रोती हो ?’

वह कुछ न बोली । हरीशने फिर कहा —‘तुम जो चाहती थीं वह हो गया, अब रोती क्यों हो ?’

आंसुओंसे भोगी लाल-लाल आंखें कुंवरने हरीशपर गड़ा दीं ।

वह अप्रतिभ-सा खड़ा रहा चुप.....निस्तब्ध !

कभी-कभी जीवनमें ऐसा भी समय आता है, जब हम जो कुछ चाहते हैं, वही स्वप्न और कल्पनाकी दुनियांमें यथार्थ बन पड़ता है, उस समय हम अपनी अज्ञात स्वार्थपरता पर हंस देते हैं, लेकिन खोखले जीवनकी उस बेबस हंसीमें कितना मर्म होता है, कितनी वेदना ! वही सब कुंवर सोच रही थी और अनायास वह कह उठी—‘मैं क्या चाहती थी और क्या हो गया !’

सौगात

‘मेरा मतलब था ...कुछ नहीं, यही कि तुम तो हर पुरुषको दुखी देखना चाहती हो न, अब मैं दुखी हो गया। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो गयी...क्यों, नहीं?’ हरीश कुछ सिटपिटा गया था।

खिसियाकर जैसे कुंवरने कहा—‘पुरुष होते ही ऐसे हैं।’

‘कैसे?’

‘तुम जैसे।’

तनिक उत्तेजनाके स्वरमें हरीशने कहा—‘कुंवर, तुम इस सहानुभूतिको मुझपर की गयी कृपा समझती हो? मुझे नहीं चाहिए तुम्हारी यह कृपा, मैं भाग्य-हीन होकर इस संसारमें आया था और उसी तरह अब जानेकी चिन्तामें हूँ—मुझे चुपचाप जाने दो, तुम मेरे भाग्यपर चार चांद तो नहीं लगा सकतीं!’

कुंवरको गुस्सा आया, पर परिस्थितिके तकाजेने उसे चुप रहनेको बाध्य किया। वह हीराको वहीं छोड़ चुपचाप बाहर जाने लगी।

किन्तु हीरा इसी वक्त मां-मां करके चिल्ला उठी, रो पड़ी। हरीश उसे उठाने ही जा रहा था कि कुंवर पिछले पांव लौट आयी। हीराकी छोटी-छोटी बांहें उसकी गोदमें जानेके लिये फैली हुई थीं, वह आहत-सी उसपर झपट पड़ी और उसे उठाकर चुपचाप चल दी।

हरीश भी साथ-साथ पीछे-पीछे आया, बोला—

‘नाराज हो गई हो कुंवर?’

कुंवर कुछ न बोली, वह फिर बोला—

‘मुझे क्षमाकर देना कुंवर! जीवनमें मैं किसीको सुखी न कर सका; बड़ा ही अभागा हूँ।’

कुंवर सीढ़ियां उतर रही थी, एकाएक अन्तिम वाक्यसे जैसे चौंकर वह पीछे मुड़ी ।

कुंवरके मुड़ते ही उसका पैर फिसल गया, और देखते न देखते ही हीरा बारह सीढ़ी नीचे खटखटाकर जा पड़ी और कुंवर भी उसीके साथ वहींपर जा गिरी । उसने इतना होनेपर भी अपनी चिन्ता न की और बच्चीको उठाया; किन्तु बच्चीके उठाते-उठाते ही कुंवर समझ गयी—सर्वनाश हो चुका है, हरीशका रहा-सहा धन भी हमेशाके लिये उससे छिन गया है, उसके देखते-देखते ही; चुपचाप बिना एक शब्द कहे, बिना 'बाबू-बाबू' कहे, वह जहांपर पड़ी, पड़ी ही रह गयी ।

अब हरीश था, और उसकी श्मशान-सी कुटिया । अब दिनमें ही उसके लिये अंधेरा था, वह अपने आपको अमंगलकी मूर्ति-सा समझ रहा था । सोनेका संसार उसका उजड़ चुका था, स्त्री चल बसी थी, गोदका खिलौना चुपचाप मिट्टीमें गाड़ दिया गया था । उगता हुआ फूल, उसके जीवनका जलता हुआ चिराग़ किसीने जबरदस्ती बुझा दिया था, पलकें भौंगी हुई थीं, एक कातर दृष्टि वह तालमें रखे खिलौनोंपर गड़ाए हुए था, जो अब चुप थे, हमेशाके लिये चुप । खूंटियोंपर हीराके कपड़े लटक रहे थे, हमेशाके लिये आशा छोड़े हुए ! बटन खुली छोटी-छोटी-सी जूतियां आसमानकी ओर ताक रही थीं ! गुड़िया मानो कोनेपर पड़ी-पड़ी चीत्कार कर रही हो—'कहां है हीरा ? कहां है हीरा !' और सोचते सोचते हरीशका हृदय कराह उठा, चिल्ला उठा—'बेटी ! बेटी !' मगर कहां थी बेटी, चारों ओर जैसे अंधेरा ही अंधेरा था । उसने बच्चीका स्विच दबाया । बिजलीकी लाल-धुंधली रोशनी

सौगात

कमरेके अंधेरेको मिटा न सकी । बाहरका अंधेरा बिजलीकी बत्ती मिटा सकती थी, पर भीतरके अंधेरेको कौन मिटा सकता था ?

सीढ़ियों पर खट-खटकी आवाज आई । हरीशने बाहर भांका, कुंवर आ रही थी ।

भीतर आते ही उसने कहा—

‘आओ कुंवर ! कैसे आयीं ?’

‘क्यों मेरा आना तुम्हें.....एक कामके लिये आई हूँ । एक चीज मांगनी है, दोगे ?’

‘क्या माफी ?’ हरीशने मुस्कानेकी चेष्टा की ।

‘हां !’ वह कुछ सोचकर बोली—‘क्या दोगे ?’

‘किस बातकी माफी कुंवर ? तुमने क्या किया, मेरा भाग्य था—खेल खत्म हो गया । ईश्वरकी दया है कि तुमपर कोई चोट न आने पायी !’

‘तुमने एक दिन कहा था, मैं पुरुषोंसे घृणा करती हूँ, उन्हें दुखी देखना चाहती हूँ, इसीलिये.....’

बात काटकर हरीश बोला—‘इसीलिये तुमने मुझे जान-बूझकर दुख दिया, क्यों यही न ?’

कुंवर चुप रही, कुछ बोली नहीं—हरीश उसका हाथ पकड़कर लाया और कुर्सीपर बैठाने लगा, एकायक कुंवरने हाथ छुड़ाया और उसके पैरोंपर गिरते-गिरते बोली—‘मुझे क्षमा कर दो, क्षमा कर दो !’

‘अरे, तुम्हें क्या हो गया कुंवर ! क्या करती हो ?’ उसने उसे उठाया और कातर दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए बोला—

‘तुमने मुझपर जो कृपा की, उसका बदला अगर मैं दे सकता, तो मैं.....जिसे किसीने नहीं अपनाया, उसपर तुमने दया की। अपना’ ..’ और वह आगे न बोल सका !

कुंवर आंसुओंकी झड़ीके साथ हरीशसे लिपट गयी। उसकी छातीमें अपना सिर रखकर बोली—‘मुझे अपने हृदयमें स्थान दे दो।’

हरीश क्षणभर निस्तब्ध रहा—गला उसका भर आया था, उसी भरे गलेसे बोला—‘कुंवर ! मैं बड़ा अभागा हूँ.....’

कुंवर छिड़क पड़ी, बोली—‘बस चुप रहो, हर वक्त अभागा-अभागा न कहा करो। मैं अभागेके हाथमें अपने आपको सौंपने नहीं आयी।’

एकायक हरीश हंस पड़ा,—‘अरे तुम क्या कहती हो, सौंपने ? अपने आपको’ ‘क्या मेरे हाथमें ?’

‘हां, तुम्हारे हाथमें, तुम स्वीकार करो न करो, मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती—कभी नहीं !’

हरीश और भी जोरसे हंस पड़ा। कुंवर उसी तरह बोलती रही—

‘तुम्हारे हंसनेका तात्पर्य मैं समझ गयी हूँ, मैं एक दिन तुमसे घृणा करती थी, तुम्हारा ख्याल है; नहीं नहीं, तुम नहीं जानते, मैं तुमसे... मैं तुमसे...मैं तुम्हें चाहती हूँ—इमेशासे चाहती हूँ। क्या तुम स्वीकार करोगे ? तुम्हें स्वीकार करना ही होगा !’

हरीश चुप रहा।

इसी समय पूर्णिमाने आकर निस्तब्धता भंग की। बोली—

‘भैया !’

‘अरे पूर्णिमा ! तुम यहां ?’

सौगात

‘हां, जानते हो, बिना मेरे पूर्णिमा कैसे होगी !’

और उसने जीजीका हाथ और हरीशका हाथ मिला दिया ! स्वयं वह खुश थी; किन्तु हरीशने स्पष्ट देखा, पूनमका हृदय जैसे कराह रहा था ! और वह लौटी जा रही थी ।

अक्टूबर १९४०

उसने कहा था

जिसके अतुल सौन्दर्यसे एक दिन घरका कोना-कोना आलोकित हो उठा था, उसकी आज यह कैसी दुर्दशा ! सुरेश प्रभाके रोग-पांडुर शीर्ण देहपर नजर गड़ाये हुए आंखोंसे बड़े-बड़े आंसू गिर रहा था।

बाहर निस्तब्ध रात्रिकी नीरव छायामें वर्षाकी छोटी-छोटी बूंदोंके शब्द सुनाई दे रहे थे। वातावरण शान्त था। प्रभाके कमरेमें बिजलीका हरित प्रकाश मानो शीतलताको विखेर रहा था। प्रभाके गरम माथेपर सुरेशका हाथ पड़ते ही उसने आंखें खोल दीं, वह बोली—
‘तुम अभी तक सोये नहीं ? बेबी कहाँ है ?’

‘वह सोई है, तुम भी सोई रहो।’ सुरेशने उसके सरपर हाथ फेरते हुए कहा।

प्रभाने पुनः आंखें बन्द कर लीं।

आज प्रायः दो वर्षका अरसा हो गया। सुरेश इसी तरह रुग्ण प्रभाके सिरहाने बैठकर उनीदी रातें गुजारा करता है। पत्नी की जीवन रक्षाके लिये उसने सामर्थ्यसे बाहर चेष्टा कर ली थी, किन्तु प्रभाकी काल व्याधि मानो अपनी सर्वप्राप्ती शक्तिसे सभी कुछ ही व्यर्थ करती हुई उसे दिनपर दिन मृत्युके पास खींचे लिये जा रही थी।

सौगात

सुरेश सोचता रहता है, प्रभाको यदि कुछ हो गया तो वह कैसे जिन्दा रहेगा, कैसे बेबीकी प्राण-रक्षा कर सकेगा ? उसे चार वर्ष पहले की अपनी दशाका ख्याल हो आया, सभीने उसे जब दूधकी मक्खीकी भांति अलग फेंक दिया था तो प्रभाने ही उसके जीवनको अपनी प्रभासे आलोकित किया था । माता-पिता और बन्धु बान्धवके असीम स्नेहके बदले उसे प्रभाका ही स्नेह प्राप्त हुआ है । पैतृक धन-सम्पत्तिके नामपर उसके पास प्रभाका स्नेह ही एकमात्र धन था, जिससे वह अपने प्राणोंकी शून्यताको भर सकता था । मानव स्वभाव ही ऐसा है, असंख्य शून्यताओंके रहते भी यदि उसे किसी सहृदयके हृदयका कोमल स्पर्श प्राप्त हो जाय तो अपनेमें पूर्णताका अनुभव करने लगता है । सुरेशके जीवनको भी प्रभाने आते ही स्नेह-प्रेम, माया-ममता आदि शक्तियोंसे परिपूर्ण कर दिया था । बिना प्रभाके भी वह कुछ कर सकता है, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था ।...और जब उसने प्रभाके परिपूर्ण प्रेमके एकमात्र दान, फूलकी कोमल कलौके समान दो वर्षकी बेबीकी ओर नजर उठाई, उसका शरीर सिहर उठा ; कहीं यह अभीसे माताके अमृतमय स्नेहसे वञ्चित न हो जाय ?

अत्यन्त कातर भावसे मन-ही-मन उसने भगवानसे प्रार्थना की कि भगवान ! प्रभाकी जीवन-रक्षा करना ।

किन्तु उसकी प्रार्थना शायद भगवानने सुनी नहीं । सवेरा होते ही प्रभाकी अवस्था और भी शंकाकुल हो उठी, बार-बार उसे मुर्छायेँ आ रही थीं । सुरेश डाक्टरको लेकर आया, डाक्टरके इन्जेक्शनसे प्रभाने आंखें खोलीं ।

उसने कहा था

सिरहाने बैठे सुरेशने प्रभाके बालोंमें हाथ घुमाते हुए पूछा—‘आज कुछ ज्यादा तकलीफ मालूम होती है न प्रभा ?’

निष्प्रम आंखोंसे प्रभाने एक बार सुरेशकी ओर देखा, कुछ भी वह न बोल सकी। एक अव्यक्त व्यथा भरे आवेगसे सुरेशकी अश्रुधारा आंखोंसे वह निकली।

दूरपर बैठी बेबी पिताके आंखोंमें अश्रु देखकर वहांपर आ गई और अपने हाथसे आंसुओंको पोंछने लगी। आलहादसे सुरेशने बेबीको हृदयसे लगा लिया। देखते-देखते प्रभाके भी दो बूंद आंसू टुलक पड़े।

अश्रुसिक्त अत्यन्त कम्पायमान कंठसे प्रभा बोली—‘पिछले जन्मकी मेरी बड़ी भारी तपस्या थी जिसके कारण मुझे तुम्हारा साथ मिला था, किन्तु ईश्वरको यह मंजूर नहीं, मगर तुम क्यों मेरे लिये इतने परेशान होते हो...मेरी एक बात मानोगे ?’ बोलनेके इतने ही परिश्रमसे प्रभाके मुखपर पसीना आ गया।

तौलियासे उसके मुखका पसीना पोंछते हुए सुरेशने कहा—‘क्या बात ? तुम जिन्दा रहो, मैं सब कुछ कर सकता हूँ।’ वह अत्यन्त दयनीय दृष्टिसे प्रभाके मुखपर देखने लगा। बेबी अपने खिलौनोंमें व्यस्त एक ओर चली गई।

आवेग भरे स्वरमें प्रभा बोली—‘मैं क्या चाहती नहीं थी कि अपने देवताकी सेवा करनेके लिये कुछ दिन और जिन्दा रहूँ, किन्तु होनीको कौन रोक सकता है, मगर इस अन्तिम समय पर तुम मेरी एक बात मान लो, मानोगे ?’

‘कहो।’

सौगात

‘तुम दूसरी शादी कर लो । राधाका तुमपर असीम स्नेह है, वह अपने मन और प्राणसे तुम्हें चाहती है, उसकी हंसती खिलती दुनियाको मैंने जबरन उजाड़ दिया । उसका हृदय अवश्य मुझे शाप दे रहा होगा, और क्या मालूम उसीकी अन्तर्वेदनाका यह अभिशाप हो कि मैं आज मृत्युसे पहले ही इस असीम यन्त्रणाको भोग रही हूँ ।’ कई बार सांस लेते हुए प्रभाके मुखसे उक्त वाक्य निकले ।

सुरेशने कुछ अधिकारी स्वरमें कहा—‘प्रभा ! तुम फिरसे वही जिद कर रही हो, तुम्हारी अवस्था ऐसी नहीं कि तुम मेरे लिये इतना सोचो और इतना कहो । तुम आराम करो, देखो कितना पसीना हो आया है ।’ और वह फिरसे उसके मुखका पसीना पोंछने लगा ।

किन्तु प्रभा न रुकी, बोली—‘नहीं तुम्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी, नहीं तो परलोकमें भी मुझे शान्ति न मिलेगी । तुम कहो, तुम मेरी बात मानोगे, मरते समय मुझे निराश न करोगे ?’

‘तुम इस बक्त सो जाओ, तुम्हारे सोनेसे मेरा जी शान्त होगा, तुम्हारी इन बातोंसे नहीं हो सकता, इतना तुम अवश्य विश्वास रखो ।’ सुरेशने उत्तर दिया ।

प्रभा फिर भी न रुकी, बोली—‘सारी जिन्दगी ही मैंने तुम्हें तकलीफ दी है, फिर इस अन्तिम मौकेपर...।’ वह बाकी बोल भी न सकी, कि अत्यन्त अवसन्न हो पड़ी ।

सुरेशने बिजलीके पंखेकी रफ्तार एक नम्बर आगे बढ़ा दी, वह पसीना पोंछने लगा । औषधिकी मात्रा देकर वह प्रभाके सिरहाने बैठ गया । प्रभाको नींद आ गई ।

बैठे-बैठे सुरेश प्रभाकी बातपर विचार करने लगा, वह कहती है—
 'राधासे शादी कर लो ! तुम्हें मेरी बात माननी ही होगी।'...मगर
 क्या प्रभा कुछ ही दिनोंकी मेहमान है ? क्या उसे अपनी मृत्युपर
 विश्वास हो गया है...नहीं-नहीं संसारमें प्रभा क्या कोई भी ऐसा नहीं
 जो अपनी मृत्यु तिथिको जान सके, प्रत्येक रोगीको अपनी मृत्यु नजदीक
 ही आई दिखती है । प्रभा भी बीमार है, वह अपनी बीमारीसे इतनी
 तंग आ गई है कि उसे मृत्यु ही अपनी एकमात्र सहायिका दीखती है ।
 मगर नहीं, प्रभा अच्छी हो जायगी, किसीकी ताकत नहीं कि वह मेरे
 हाथसे उसे छीन सके । फिर प्रभाको क्या सूझी कि वह मुझे राधासे
 शादी करनेका आग्रह कर रही है । वह ऐसी ही है, उसे अपनेसे ज्यादा
 मेरे आरामका ख्याल है । वह समझती है, राधा मुझे प्रेम करती है
 तो मैं भी शायद राधाको चाहता हूँगा, मगर उसे क्या मालूम कि राधा
 क्या; प्रभाके अलावा अन्य कोई भी मेरे हृदय पर अपना कब्जा नहीं
 जमा सकता । इसे मैं जानता हूँ राधा स्कूलके जीवनसे ही मुझे अपना
 जीवन समर्पण कर चुकी है, और आज समाजमें बड़ी भारी बदनामीको
 सहन करती हुई भी वह जीवन भर अविवाहिता रहनेका संकल्प कर
 चुकी है, वह मुझे बाफ-साफ लिख ही चुकी है कि—'तुम चाहे जो कुछ
 करो, मैं तो तुम्हारे नामकी माला जपती हुई आजीवन अविवाहिता ही
 रहकर दिन काट लूंगी । अब पत्र द्वारा भी कभी कष्ट न दूंगी...' ।
 किन्तु फिर भी मैं क्या राधासे प्रभाका-सा स्नेह प्राप्त कर सकूँगा ?...
 यह नासुमकिन है, प्रभा-प्रभा है, प्रभाके द्वारा ही राधासे परिचय हुआ
 किन्तु राधा प्रभा कभी भी नहीं हो सकती ।

सौगात

और सुरेश एकायक जैसे नौदसे जागा । सन्ध्या हो आई थी । नौकरानी बेबीको गोदमें लिये हुए सुरेशको भोजनके लिये बुला रही थी । सुरेशने उसे इशारेसे मना किया, वह चुपचाप बाहर चली गई ।

प्रभाका एकहरा श्वास चल रहा था । मृत्युकौ छटपटाहटमें भी उसने सुरेशका हाथ अपने दोनों हाथोंमें ले लिया था । वह कुछ कहती जा रही थी, किन्तु सुरेशने यही समझा कि—मेरी अन्तिम विनती मान लेना ।



प्रभाका स्वर्गवास हुए एक वर्ष हो चुका था । सावनकी अंभियारी रात थी । कई दिनोंसे वर्षाकी भड़ी बन्द ही न होती थी । सुरेश अन्यान्य कई रातोंकी तरह इस रातको भी जागकर ही काट देना चाहता था । प्रभाका स्मरण और बेबीकी चिन्ता उसे विचलित किये बिना न रहने देती थी । बहुत क्षण तक वह वर्षाके रिमझिम शब्दके साथ बेबीके सिरपर हाथ फेरता हुआ अपने मनको बहलाये हुए था । एका-एक जैसे किसीने उसके कानोंमें कहा—‘मेरी अन्तिम विनती मान लेना नहीं तो मुझे परलोकमें भी शान्ति नहीं मिलेगी ।’

सुरेश विचलित हो उठा, बिजलीका स्विच दबाकर वह उठ बैठा । कमरेकी स्वच्छतामें बिजलीका प्रकाश जगमगा उठा । बेबी भी उसीके साथ ही जाग गई । बाबू-बाबू कहती हुई वह जैसी डरी-सी सुरेशके गलेसे चिपक गई । सुरेश उसकी पीठ सहलाते हुए कहने लगा—‘अभी रात है बेटी, तुम सो जाओ ।’

रौनेका-सा उपक्रम करके बेबी बोली—‘कब आयेगी मेरी मां ?’

कोई उत्तर न देते हुए भी सुरेशने कहा—‘भगवानसे हाथ जोड़ प्रार्थना कर बेटी !’

रोजके अभ्यासके अनुसार बेबीने उस रातको भी कमरेकी दीवाल पर लगी कृष्ण मूर्तिके सामने हाथ जोड़कर अपनी तुतली भाषामें कहा— ‘भगवान ! मेरी मांको अच्छा कर देना ।’ और वह पुनः पिताके गलेसे झूलकर पूछने लगी—‘बाबू ! अब मेरी मां अच्छी होकर कब आयेगी ?’

और रोजके ही अभ्यासके अनुसार सुरेशने भी उत्तर दे दिया— ‘कल-परसों ही आयेगी बेटी !’

बेबीने कहा—‘अब भगवान मेरी मांको कल-परसों ही ला देगा न बाबू !’

सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी सुरेश उमड़े आंसुओंको नहीं रोक सका । सारे हृदयका तूफान जैसे आंखोंके रास्ते बह निकला । बेबी सुरेशके मुंहपर शंकासे नजर गड़ाये यह सब देखकर बोली—‘क्या कल-परसों नहीं आयेगी मेरी मां ?’

भर्राये गलेसे ही सुरेशने कहा—‘आयेगी क्यों नहीं बेटी, जरूर आयेगी !’

बेबीने पिताके आंसू पोंछते हुए कहा—‘तो फिर रोते क्यों हो बाबू ?’ बात बदलनेके लिये मुखमें किंचित हास्यकी रेखा लाते हुए सुरेशने कहा—‘अच्छा बेबी तेरी मां आयेगी तो तू क्या कहेगी ?’

‘मैं कहूँगी—मां तू कल-परसों क्यों आई, आज क्यों नहीं आई ?’ बेबीने उत्तर दिया !

सौगात

बेबीको छातीसे चिपकाते हुए सुरेश बोला—‘फिर तू मांकी गोदमें बैठ जायेगी न बेबी ?’

‘हां मैं मांकी गोदमें बैठ जाऊंगी और फिर कभी उठूंगी नहीं...मां तो बहुत अच्छी है न बाबू ? वह कहेगी अरे देखो हमारी बेबी कितनी बड़ी हो गई है...अच्छा बाबू ! जब मां आ जायेगी तब भी हाथ जोड़कर मैं कहूंगी कि भगवान ! मेरी मांको अच्छी कर देना !’ काफी देर मेहनत करके बेबीने इन वाक्योंको कहा, सुरेशका जैसे कलेजा फटने लगा, वह बोला—‘हां बेटा, जरूर कहना होगा—अच्छा तू इस वक्त सो जा, फिर कल खिलौने लायेंगे तेरे लिये !’

बेबी चुपचाप सो गई । सुरेश बैठा-बैठा सोचने लगा—भगवान ! यह अबोध बच्ची अपनी मांके प्रति सदा ही अबोध रह जाती तो कितना अच्छा होगा । और प्रभाकी जीर्ण-शीर्ण मुखाकृति उसके सामने आ गई । मानो जैसे वह कह रही हो—‘तुमने मेरी अन्तिम विनती नहीं मानी, मुझे परलोकमें भी शान्ति नहीं ।’ सुरेश चारपाईसे उतरकर खिड़कौके पास खड़ा होकर वर्षाके रिमझिम शब्दको सुनने लगा । बाहर दूर रास्तेपर एक लाइट पोस्टके नीचे कोई भिखारी चीथड़ोंमें लिपटा हुआ न जाने किस वेदनासे कराह रहा था, मर गया रे...मर गया रे का शब्द दूरसे ही सुरेशके कानोंमें पड़ा । पुलिसका पहरेदार छाता ओढ़े भिखारीके आसपास ही चक्कर लगा रहा था । सुरेश अपनी धुनमें खोया हुआ भिखमंगेकी उस असहनीय और अभावनीय वेदनाका तनिक भी अनुभव नहीं कर सका ।

मानव स्वार्थी है, किन्तु लाचार है । अपने अभावोंको वह सबसे अधिक देखता है ।

सुरेशने खिड़की बन्द कर दी और चियरपर बैठकर एक मासिक पत्रिकाके पन्ने उलटने लगा । किन्तु आखें उसकी टेबुल पर रखे प्रभाके चित्रपर थीं जो उसे शादीसे पहले ही प्राप्त हो चुका था । उसने देखा प्रभा सभी दृष्टियोंसे सम्पूर्ण थी, इस प्रकारकी असाधारण स्त्रीका अकाल में ही काल कबलित हो जाना संसारमें किसी महा-भयंकर विपत्तिकी सूचना देता है । उसे किसी तरह विश्वास ही न हुआ कि प्रभा भी मृत्युकी गोदमें सदाके लिये समा सकती है । वह एक दार्शनिककी भांति इस घटना पर विचार करने लगा, किन्तु प्रभाके अन्तिम शब्द कि 'राधासे शादी कर लेना' उसके कानोंमें गूँजने लगे । सोचते-सोचते वह पुनः अपने स्कूल और कालेज जीवनमें विचरने लगा । राधा हाई स्कूलसे कालेज तक उसके साथ रही वह मेरे लिये क्या नहीं करना चाहती थी किन्तु अपने आप ही उसने एक दिन प्रभासे परिचय कराया और फिर प्रभा उसके हृदय राज्यकी अधिश्चर्या ही बनकर रही, राधा जो चाहती थी उसपर तुषारपात हो गया, किन्तु उसने स्वयंको ही इसका दोषी करार दिया, अपने आपको ही मिटा डालना उसने उचित समझा और आज वह अपनी समस्त कामनाओंको, जीवनकी समस्त आशाओं और अनुभूतियोंको समेटकर एक-एक करके जैसे महानाशके गर्तमें डाल देना चाहती है ! सर्वनाश ही मानों उसका मूल-मन्त्र हो गया है । हो क्या, प्रभा ठीक कहती थी कि 'कहीं राधाके ही अभिशापका यह फल न हो.....नहीं-नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता । सुरेश सोचने लगा— आधुनिकताके आवरणसे ढकी मेरी आखें राधाकी सौम्य-शान्त मूर्ति को न देख पायी, किन्तु उसकी विश्वसनीयतापर अविश्वास करनेका कोई

सौगात

कारण नहीं, वह कभी भी मुझे दुखी नहीं देख सकती; उसकी हार्दिक कामना सदा यही रहती होगी इनका कल्याण हो, ये सुखी रहें ! और इसी विचारमें सुरेशको भपकी आ गयी ।

दूसरे दिन जब ओफिससे लौटा तो अपने मनमें बह दृढ़ निश्चय करके लौटा कि आज प्रभाकी अन्तिम इच्छा पूर्ण करने तथा उसे परलोक में शान्ति देनेके लिये राधाको एकबार पत्र लिखकर देखूं, वह इस सम्बन्धके लिये अब भी राजी है या नहीं, मन उसका अत्यन्त खिन्न एवं विषण्ण था; दिल नहीं चाहता था कि कोई भी काम करे, किन्तु फिर भी राधाके लिये एक अच्छा-सा पत्र लिखनेका साहस वह करने लगा था । नौकरानीने खानेके लिये पूछा, उसने इन्कार कर दिया ।

सन्ध्यासे पहले ही वह बत्ती जला कागज-कलम लेकर अपने कमरेमें बैठ गया । उसने एक-एक करके कई पत्र लिखे, किन्तु एक भी उसे पसन्द नहीं आया, वह लिखता और फाड़ देता । चिन्ताओंके अम्बारमें वह ऐसा डूबा कि वहांसे निकलनेका उसे कूल किनारा ही नहीं मिला । कभी सोचता यदि उसने अस्वीकार कर दिया तो ? कभी सोचता वह समझेगी लाचारीपर मुझे याद किया है, चिराचरित स्वार्थ का दोषी वह मुझे भी समझ लेगी । कभी उसे ख्याल आता; राधाको यदि मेरा ध्यान ही होता तो आज प्रभाको गुजरे पूरा एक वर्ष हो गया है, क्यों नहीं उसने एक मामूली-से एक सहानुभूतिके ही पत्रसे याद किया ? और कुछ देरके लिये उसने पत्र लिखनेका ख्याल स्थगित कर दिया और बेबीके साथ बातें करने लगा ।

पिताको प्रसन्नचित्त देख बेबी उससे कहानी सुनानेका अनुरोध

उसने कहा था

करती । सुरेश उसे एक साथ कई कहानियां सुना देता । उस वक्त भी कहानी सुनते-सुनते बेबी एकबार पुनः पूछ बैठी—‘बाबू ! अभी तक परसों नहीं हुआ, कब आयेगी मां ?’

सुरेशने कहा—‘मां……बेटी ! तेरी दूसरी मां आयेगी, बहुत जल्द ही आयेगी ।’

‘दूसरी कौन ? वही मां, मेरी मां ?’ बेबीने कहा ।

‘हां बेटी, बैसी ही मां—उससे भी अच्छी !’

‘वह भी मुझे गोदमें लेगी ?’

‘हां ।’

‘मुझे बेटी-बेटी कहेगी मेरी दूसरी मां ?’

‘हां बेटी !’

‘और खूब प्यार भी करेगी न बाबू ?’

‘हां ।’

और इन्हीं बातोंमें सुरेशने बेबीको सुला दिया । स्वयं वह पुनः कागज-कलम लेकर सोचता रहा । बहुत देर सोचनेके बाद उसने एक संचित-सा पत्र जिसमें उससे केवल मिलनेका अनुरोध किया था, लिखा । पत्र समाप्तिपर उसे प्रतीत हुआ मानो उसका शरीर अत्यन्त शिथिल हो पड़ा है । उसने टेम्परेचर देखा १०२ डिग्री बुखार हो आया था । नींद न रहनेपर भी सुरेश विस्तरपर लेट गया । नौकरानीसे उसी वक्त पत्र पोस्ट करनेको कह दिया ।

एक सप्ताह बीत जानेपर भी सुरेशका टेम्परेचर १०४ डिग्रीसे कम न हुआ । किन्तु आज वह अपनेको कुछ चैतन्य-सा पा रहा था ।

सौगात

यद्यपि उठनेके शक्ति उसमें न रही थी फिर भी वह पड़े-पड़े नौकरानीसे बेबीके विषयमें पूछताछ करने लगा ।

नौकरानीने एक बन्द लिफाफा सुरेशके हाथमें देते हुए कहा—‘आज तीन दिनसे यह चिठ्ठी आई पड़ी है ।’

राधाके हस्ताक्षरोंको लिफाफेके पतेसे ही पहचान कर सुरेशने शान्तिकी सांस ली । उठनेका उपक्रम करता हुआ भी वह नहीं उठ सका, पड़े-पड़े ही उसने चिठ्ठी पढ़नी आरम्भ की; उसमें लिखा था—
‘प्रिय सुरेश बाबू !

आपका पत्र पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ । आपने मुझे तब बुलाया, जब मैं अपने-आपको आजादीके हाथोंसे छीनकर जबरन ही किसी अन्यकी परतंत्रतामें बांध चुकी हूँ । वे दो-तीन दिनके लिए घरसे बाहर हैं, बिना उनसे पूछे आपके पास आनेका दुस्साहस कैसे करूं ? और भी ज्यादा आश्चर्य मुझे इस बातका है कि मेरी अच्छी सहेली प्रभाके होते हुए भी मेरे बिना आपका कौन-सा काम अटका रहा है ?

आपकी—राधा’

पत्र पढ़कर सुरेशको मानों हजार-हजार बिंलुओंने एक साथ काट खाया, एकायक एक चीत्कारके साथ उसके मुंहसे निकला—‘उसने कहा था !’ और वह मूर्च्छित हो गया । देखते-देखते टेम्परेचर २ डिग्री और बढ़ गया । उसकी अवलम्ब अकेली नौकरानी क्या-क्या करती ? उसने डाक्टरको बुलवाया किन्तु डाक्टरके आनेसे पहले ही सुरेश सदाके लिये आखें मूंद चुका था ।

पहले बेबी मांके बारेमें पूछा करती थी, अब वह नौकरानीसे पिताके बारेमें पूछती है और नौकरानी भी कह देती है—कल-परसों आयेंगे तेरे बाबू !’

किन्तु.....।

अनुरोधके बाद

दर्शनी पानी देनेमें व्यस्त थी और मैं स्नान करनेमें, इसी समय गांवकी कोई बहू आई, मैं उसे जानता नहीं था, दर्शनी बोली—‘क्यों भौजी क्या खाना बनेगा आज ?’

‘क्या और बनेगा दाल-मरुआ जो है वही’

पानी देते-देते दर्शनीने कहा—‘भैया आज विदेशसे आये हैं कितने ही वर्षों बाद, उनको न जिमाओगी ?’

गम्भीर मुस्कान-भरी दृष्टिसे एकबार भाभीने मेरी ओर देखा और बोली—‘कहां ऐसा मेरा भाग्य, कब आये हैं ?’

दर्शनीने कहा—‘कल रातको ।’

और इसके बाद भाभीने घड़ा भरा और चली गई ।

मैंने दर्शनीसे पूछा—‘कौन भाभी है रे दर्शनी ?’

‘दिवान दादाकी बहू’ दर्शनीने जवाब दिया ।

मैंने पूछा—‘दिवान भैया आजकल हैं कहां ?’

दर्शनी बोली—‘क्या जाने कहां कलकत्तेकी तरफ सुना है, आज पूरे चार वर्ष हो गये घर आनेका नाम ही नहीं लेता, शादीके बाद वह घर आया ही नहीं, जवान बहू घरमें उसके लिये रो रही है ।’

सौगात

आश्चर्यसे मैंने पूछा—‘तो वह घर आता क्यों नहीं ?’

दर्शनीने कहा—‘क्या जाने, क्या सर खराब हुआ है उसका, सुना है कि वह इस औरतसे खुशी नहीं है । एक दफे फांस तक खाने लगा था इसके लिये ।’

मेरी सुननेकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी, मैंने पूछा—‘क्या ये भाभी अच्छी नहीं है ?’

दर्शनी बोली—‘क्या जाने कैसी है, नहीं तो होगी अच्छी । अभी तो दिवान दादाने घर आनेका नाम भी छोड़ रखा है, जैसे तो क्या पर है उसपर लगा हुआ दिखनेमें भी अच्छी है, बोलने-चालनेमें भी अच्छी है, स्वभाव भी अच्छी ही है ।’

और इसके बाद स्नान समाप्त करके हम दोनों घर चले गये, पर मेरे मनमें एक व्यर्थकी चिन्ता सवार हो गई । चेष्टा करनेपर भी मैं इस चिन्ताको अपने मनसे नहीं मिटा सका ।

दूसरे दिन सबेरे धारेपर अकेले स्नान करने गया तो मैंने देखा भाभी आज भी उसी समय पानी लेने आ रही है, मैं चाहता था कि भाभीसे उसके जीवनके बारेमें कुछ बातें करूं, पर इस तरह अकेले कुछ बोलना मैंने उचित न समझा, मैं चुप था ही कि भाभीने अपने आप ही कहा—‘घरपर मन लगता है तो ?’

मैंने सीधा जवाब दे दिया—‘न भी लगे तो क्या किया जाय ?’

मुस्काकर भाभीने कहा—‘शादी कर लीजिये, मन लग जायगा ।’

मैंने कुछ ठिठोलीके-से स्वरमें कहा—‘मगर कहां होती है शादी, मुझसे तो कोई शादी करना ही नहीं चाहता ।’

भाभी बोली—‘फूटे ही होंगे उसके भाग जो आपसे शादी करना न चाहेगी, आप जैसोंके लिये लड़कियोंका अकाल है, हजार मिलेंगी।’ वस इस वक्त शादी करके जाना होगा, जन्म भर भटकते रहना क्या अच्छा है ?’

मैंने कहा—‘इस वक्त ? मैं तो इस वक्त एक हप्तेकी छुट्टीपर हूँ, कल ही परसों मुझे चले जाना होगा।’

भाभी बोली—‘अजी हां चले जाना होगा, वहां क्या किसीको रखा हुआ है ?’

‘क्या रखा हुआ है ?’ मैं उत्सुक हो उठा।

‘शादी और क्या ? विदेश जाकर तो तुम मदोंको जैसे काठ मार जाता है, घरकी सुध ही नहीं लेते, इतने-इतने बरस गुजर जाते हैं रखी नहीं तो और क्या होंगी ?’

मैं इतनेमें स्नान कर चुका था, धोती फीचनेकी तैयारीमें था कि भाभीने मेरे हाथसे उसे छीन लिया, बोली—‘कोई और होती तो धोती घोने देती, क्या करूं मैं ही छाल दूं।’

मैंने मना किया, पर भाभीने उसे दिया नहीं।

मैं सोचने लगा कैसा अभाग है वह दीवान भैया, जिसने ऐसी सुलक्षणा स्त्रीको त्यागा हुआ है। सौन्दर्य और गुणोंकी इस पावन-मूर्ति के सामने मेरा हृदय झुक गया, मन ही मन मैं अपनेको सराहने लगा।

मैंने पूछा—‘भाभी ! भैया आजकल कहां हैं ?’

वह बोली—‘देखो नं कितने अचरजकी बात है, कलकत्तेमें आज चार सालसे बैठे हैं और घरका नाम नहीं लिया जाता। घर अगर

सौगात

नहीं ही आना तो मेरे लिये एक जहरकी पुड़िया भेज दे, बस फिर निश्चिन्त होकर जहां चाहे बैठे रहें । कोई बुलाने नहीं जायगा ।’

मैने कहा—‘आखिर कलकत्तेमें कुछ काम तो कर ही रहे होंगे !’

भाभी बोली—‘कर भी रहे होंगे तो हमें क्या और न भी करें तो हमें क्या; हमारे लिये तो दोनों ही बातें बराबर हैं मगर मैं कहती हूँ कैसी नौकरी है जिसमें एक दिन घर आनेकी छुट्टी भी नहीं मिलती, मगर पहले घर आनेकी मर्जी होती तब न आते । आग लगे ऐसी नौकरीपर जिसमें घरका मुंह देखना भी नसीब नहीं ।’

मैने देखा भाभीकी आंखें डबडबा आई है, इस उभरी जवानीमें भी उसकी उमंगें, आशायें और यौवनकी रंगीनियां सभी कुछ हताश होकर अपनेमें ही थम गई है । जोशसे रुठा हुआ-सा भाव कुछ अनोखा-सा शैथिल्य, मुझे दया आई पर बोलता क्या और बोलनेके सिवा और मेरे पास था भी क्या ।

धोती निचोड़कर भाभीने मेरे हाथमें दे दी, मैने कहा—

‘धन्यवाद भाभी ।’

आंचल सम्भाल डबडवाती आंख मेरी ओर फिरा भाभी बोली—
‘उंह जैसे बड़ा भारी काम कर दिया हो न ?’

मैने जवाब दिया—‘बहुत बड़ा काम भाभी ।’

मुझे जानेको उद्यत देख भाभीने कहा—‘तुम कलकत्ता होकर आये हो ?’

कहां पंजाब और कहां बंगाल, भोली भाभीके दिमागमें साराका सारा देश एक गांव था, सारेके सारे शहर उस गांवके मोहल्ले ।

मैंने कहा—‘भाभी ! कहां कलकत्ता और कहां पंजाब, मैं वहां भला क्या करने जाता ?’

आश्चर्य-भरे स्वरमें भाभीने पूछा—‘तुम्हारे रास्तेमें कलकत्ता नहीं पड़ता क्या ?’

मैंने कहा—‘नहीं तो, कलकत्ता तो बहुत दूर है ।’

क्षण-भर बाद भाभीके गालोंपर दो बड़े-बड़े आंसू टुलक पड़े । वह कुछ न बोली ।

मुझसे यह न सहा गया ; पर मैं लाचार था, क्या करता ? यह तो समझनेकी ताकत मुझमें थी नहीं कि पति-पत्नीके बिछोहमें भी कोई वेदना होती है, फिर भी मैंने भाभीसे पूछा—‘भाभी ! आपको यहां कोई तकलीफ है ?’

भाभी चुप रही, मैंने फिर पूछा—‘मैं आपकी कोई सेवा कर सकता हूँ ?’

भाभी समझी नहीं, मैंने फिर कहा—‘आप रोती क्यों हैं, कुछ बोलिये भी तो क्या बात है ?’

उसने आंचलके छोरसे आंसू पोंछ लिये, मगर बोली फिर भी नहीं ; शायद उसका मन बोल उठा—‘काश, इस व्यथाको समझा सकनेकी शक्ति मुझमें होती ?’

मुझे उसकी चुप्पी अच्छी न लगी, मैं चला आया ; मगर मुझे ऐसा लगा, जैसे किसी अज्ञात आघातने मुझे घायल कर दिया है । मन कुछ अधूरा-सा लगा ; मैंने फिर देखा, भाभी घड़ा भरकर आ रही है । उस दिन कई बार भाभीसे मुलाकात हुई, मगर भर-नजर एक-दूसरेको

सौगात

देख लेनेके सिवा और कुछ न कर सके। कल्पनाओंने मनको बुरी तरह जकड़ रखा था, रात यूँ ही गुत्तरी, कुछ भी स्थिर न कर सका कि क्या करना चाहिए, फिर भी सारी रात भरकी चिन्ताके बाद यही सोच पाया कि कल भैयाके लिए एक करारी फटकार लिख भेजूंगा।'

दूसरे दिन धारेपर गया ही था कि भाभी वहांपर पहलेसे ही बैठी मिली। मैं न जाने क्यों भाभीके सामने अपनेको अपराधी-सा समझ रहा था, मगर भाभीने मुझे क्षमा मांगने न दी। वह पहले ही बोल बैठी—'आप नाराज हो गये हैं देवरजी?'

मैंने कहा—'क्यों भाभीजी, नाराज क्यों होता?'

भाभी बोली—'फल नाराज हो गये थे तो ! हम लोग भः गांवके रहनेवाले हैं, अक्र कहां होती है ? माफ कर देना मेरा कसूर।'

'अरे आप भी क्या कहती हैं, कैसा कसूर, आखिर कुछ हो भी ?' मैं उसी लहजेमें कहता गया—'कसूर तो मेरा है, कल आपको रुलाकर चला गया।'

भाभी बोली—'रोना तो हमारे भागमें लिखा है देवरजी ! एक दिन होता तो एक दिनकी कहती, यह तो रोजका रोना है।'

मैंने कहा—'भाभी, भैयाको घर आनेके लिए आज एक चिट्ठी लिख दूं ?'

भाभीने कहा—'घर आनेकी ही मर्जी होती, तो चिट्ठियां क्या कम भेजी हैं ? यहां तक लिखा कि मरनेवाली हूँ, मगर सुनता कौन है ? एक काम कर दोगे ?'

मैंने कहा—'बोलो।'

वह बोली—‘मुझे कलकत्ता पहुँचा दो उनके पास, पहुँचा दोगे ?’

मैंने कहा—‘क्या कहती हैं भाभी आप, मैं कलकत्ता पहुँचा दूँ ? लोग क्या कहेंगे ? भैया ही क्या समझेगा ? और मुझे फुरसत ही कहां है वहां जानेकी ? आप भी अच्छा मजाक करती हैं ?’

वह बोली—‘मैं मजाक नहीं, सच कहती हूँ । कोई कुछ न कहेगा । मैं यहा अकेली नहीं रह सकती । उस भुतियाने भोपड़ेकी रखवाली करके क्या होगा ? मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे वहां तक जरूर पहुँचा दो ।’

मैंने कहा —‘भाभी, आप भी क्या व्यर्थकी बातें करती हैं । शर्म-लाज सब छोड़ दी, न बात न चीत और चल पड़े साहब कलकत्ते, बिना समझे-बूझे । मेरे साथ कोई स्त्री भी होती, तो एक बात भी थी । ये क्या हुआ कि मुझे ले चलो । और जो भैया वहां न मिले तो, और मिलकर भी उन्होंने कहीं कह दिया कि क्यों लाये, तो क्या होगा ? और फिर सब बड़ी बात मुझे फुरसत ही कहां ? आजसे चौथे रोज तो मुझे अपनी नौकरीपर हाजिर हो जाना पड़ेगा, फिर वहां कैम जाऊँ ?’

बड़े धीर भावसे भाभीने कहा—‘मैंने सुना है, तुम गांधी महात्माके चेले हो, फिर ऐसी बातोंकी परवाह करते हो ? तुम पढ़े हो, लिखे हो, अगर वे कह भी देंगे, तो तुम उन्हें समझाना ; और तुमसे ज्यादा समझदार तो वे हैं नहीं ।’

मैंने कहा—‘और फुरसत ?’

भाभी बोली—‘फुरसतकी भी एक ही कही । अरे दो दिन बाद जाओगे, तो क्या नौकरी कोई छीन थोड़े ही लेगा । एक मुसीबतकी मारी अबला पर दया करोगे, तो जुग जुग जीओगे ।’

सौगात

भाभीका कारुणिक चेहरा देखकर मुझे वास्तवमें दया आ रही थी। उनकी एक-एक बातका मैं मनसे समर्थन कर रहा था, मगर परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि बिना मौखिक क्रोध प्रगट किये काम नहीं चल रहा था। मेरे अपने भ्रमेले क्या कम थे ? कहां मैं भाभीको गलेकी फांसीकी तरह लटकाये फिरता ? क्या जाने आगे चलकर क्या हो जाता ? मैं भाभीकी सब कुछ सेवा कर सकता था, पर इस तरह आपत मैं मोल नहीं लेना चाहता था, मैंने कहा—‘महात्मा गांधीके चले होनेसे क्या दूसरोंकी औरतोंको भगाकर ले जाना पड़ता है ?’

भाभीने जवाब दिया—‘आप किसकी औरतको भगाकर ले जा रहे हैं ? मैं खुद आपके साथ जा रही हूँ और वह भी अपने पतिके पास।’

खिजियाकर मैंने कहा—‘मगर इसे मानेगा कौन कि आप खुद जा रही हैं ? खुद जाना होता, तो आज तक न जातीं ?’

‘कभी मरनेवालेको भी किसीने पूछा है कि तू आज ही क्यों मर रहा है, आज तक क्यों न मरा ?’ भाभी बोली।

‘मगर भाभी, दुनियाकी बदनामी ? दुनियामें तो दुनियांकी तरह रहना पड़ता है।’ मैंने कहा।

भाभीका चेहरा लाल हो उठा, बोली—‘आज मैं मुसीबतमें पड़ी हूँ, दुनिया भस्म पड़ने आ रही है ? उसने कितने दिन आकर मेरी सुध ली ? मैं खाती हूँ या भूखी ही मरती हूँ, कोई जानता है ? आज मैं अपने पालिकके पास जा रही हूँ, तो दुनियां समझनेवाली बन गई ? समझने दो न ऐसी अन्धी दुनियांको। अब उसके साथ मैं भी अन्धी बन जाऊं ?’

हमारा दिल साफ है, तो कोई क्या कर सकता है ? नहीं, तुम मुझे ले चलो ।’

मुझे गुस्सा आ गया था । ‘एक भद्र स्त्रीको कमसे कम सभ्यताके लिहाजसे भी किसीकी बात मान लेनी चाहिए थी, मगर भाभी तो जिद पर कमर कसे हुए थी । कोई भी तर्क उन्हें जंचता नहीं था । उसी गुस्सेमें मैंने कहा—‘भाभी, आपका दिमाग तो पागल हो गया है, पहले इसकी दवा कराइये । दुनियां अन्धी है, तो होने दीजिए । मुझमें ताकत नहीं है उससे लड़नेकी, मैं कहीं नहीं जा सकता । कल कोई बात हो गई तो ?’

तानेके स्वरमें भाभीने कहा—‘मालूम होता है, आपका अपने ही ऊपर विश्वास नहीं ।’

‘बस भाभी, बहुत बातें न बनाइये । आपको जाना हो, तो जाइये । मुझे कोई गरज नहीं आपके साथ जानेकी ।’ गुस्सेके स्वरमें मैंने कहा ।

‘गरज भला आपको क्यों होने लगी, गरज तो मेरी है—एक आफतकी मारी अबलाकी गरज, जो अपने मालिकके पास जानेके लिए आपसे भीख मांग रही है । और एक आप हैं कि अपनेको बड़ा-बड़ा तो लगाते हैं, मगर देख ली सारी शेखी ।’ भाभीने मेरे गुस्सेका जवाब गुस्सेके ही स्वरमें दिया, जिससे मैं असलमें उकता गया और मैंने कह भी दिया, ‘ओह, मैं तो उकता गया, भाभी ! आपको भी इतनी बातें आती हैं, मैं तो सपनेमें भी नहीं सोच सकता था । आप तो जैसे सारी दुनियांको अपनेमें ही समेटे बैठी हैं, जैसे कि आप ही के लिए हम मौजवानोंका जन्म हुआ है ।’

सौगात

‘आप क्या जाने ! जिसपर बीतती है, वही जानता है ।’ करुणाकी स्पष्ट छाया भाभीके मुखपर थी ।

‘मगर आपपर बीत क्या रही है ?’ मैंने झुंझलाकर कहा ।

‘क्या नहीं बीत रही ? मर भी जाऊँ, तो कोई पूछनेवाला नहीं ।’ रुआंसे स्वरमें भाभीने कहा ।

मैंने कहा—‘तो अपने मैके चली जाइये ।’

भाभीने कहा—‘आप तो अभी बच्चे हैं, हम अभागिनोंका पतिके सिवा और क्या सहारा है ।’

मैंने कहा—‘तो आज नहीं, कुछ दिन बाद भैया आयेंगे तो जरूर ही, इतनी घबराती क्यों हैं ?’

उदासीसे जैसे भाभीने कहा—‘आते ही तो आज चार सालसे न आते ।’ एक लम्बी सांस भाभीने ली और बोली—‘अब क्या आयेंगे ।’

बहुत देर हो चुकी थी, और भी देर करना अच्छा न होता, इसलिए वहांसे खिसकना ही अच्छा समझा । वहांसे चला तो आया, पर एक अजीब उलझन-सी मनमें पैदा हो गई । मैं भाभीके लिए क्या कर सकता हूँ, यही एक प्रश्न मेरे दिमागमें चक्कर काट रहा था । कई उपन्यासोंके पन्ने मेरी आंखोंके सामनेसे गुजर गये, कई सुधारकोंकी मुसीबतें मुझे याद हो आईं । इन्हीं उलझनोंमें गोते खाता हुआ मैं घरपर आया ही था कि पिताजीका विकराल रूप देखकर मैं घबरा गया, छूटते ही पिताजीने कहा—‘ये लक्षण अच्छे नहीं ।’

मेरा चेहरा काला पड़ गया, वे फिर बोले—‘क्या कर रहा था उस वक्तसे, क्या बातें हो रही थीं उससे ?’

मैंने कहा—‘बुल्ल नहीं, यूं ही ।’

पिताजी बोले—‘वह औरत अच्छी नहीं, उससे बोलनेकी जरूरत नहीं ।’

डरते-डरते मैंने एक बात पूछ ही ली—‘क्यों, उसमें क्या बात है ?’

पिताजी इससे और ज्यादा नाराज हुए, बोले—‘मगर तुम्हें उससे लेना ही क्या है ? अच्छी होती, तो मालिक उसे छोड़ता ?’

पिताजीकी बातका अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं था । उसका सबसे बड़ा कारण यह था कि मैं उनसे बहुत डरता था । मैं कुछ न बोला, चुपचाप एक ओर चला जा रहा था कि पिताजीने बुलाकर कहा—‘पराई स्त्रियोंसे बातें करनेकी कोई जरूरत नहीं, सिर्फ अपने कामसे काम और बस ।’

मैं अकेली कोठरीमें चला गया, समझ गया कि पिताजी शायद आज चार दिनसे ही लक्ष्म कर रहे हैं कि हम लोग धारेपर जाकर रोज बातें करते हैं । मैंने भाभीके बारेमें सोचना अब बन्द कर दिया, एक अज्ञात भयके मारे मैं भाभीकी सूरत भी भूल गया । भाभीका ख्याल आते ही पिताजी की डरावनी शक्ल मेरी आंखोंके सामने आ जाती ।

तीसरे दिन भोरमें मुझे विदेशके लिये चल पड़ना था और भोरमें ही पिताजीका आशीर्वाद लेकर मैं चल पड़ा । दो कोस जाते ही मुझे भाभीके दर्शन हो गये, मैं हक्का बक्का रह गया । भाभी कलकत्ते जानेको तैयार और मैं परेशान ।

सौगात

‘भाभी ये आपने क्या किया ?’

‘अब तो जो होना था हो गया मुझे कलकत्ता पहुँचा दो, तुम्हारा भला होगा ।’

‘खबरदार भाभी, आप मेरे साथ नहीं चल सकतीं, आप जैसी औरतोंको मैं अपने साथ नहीं ले जा सकता, आप फौरन लौट जाइये नहीं तो मैं घरपर आदमी भेजता हूँ ।’

‘किसके पास ?’

‘गांववालोंके पास, अपने पिताजीके पास ?’

‘आप खबराइये नहीं, किसीको मेरी कोई चिन्ता नहीं ।’

‘मगर मेरे लिये तो चिन्ता है, आपका क्या ?’

‘आप मुझे क्या समझते हैं ?’

‘एक बदमाश औरत ।’

‘क्यों ?’ भाभीका चेहरा लाल हो गया ।

‘आप खां-मुखां मेरे पीछे पड़ी है, आप मुझपर जाल बिछाना चाहती हैं क्या मैं नहीं समझता ?’

भाभी बोली—‘ओः ! अच्छा जाओ मैं लौट जाती हूँ ।’ और कहकर भाभी लौट पड़ी । मैं आगे बढ़ा, समझा एक मुसीबतसे जैसे झुटकारा मिल गया ।

विदेश जाते ही किसे रहती है गांव और गांवकी बातें याद । कामकाजके चक्करमें सभी कुछ भूल जाना पड़ता है और सभी कुछ भूलते भी मैं भाभीकी याद एक क्षणके लिये भी न भूल पाया, मगर जब मैंने एक दिन भाभीकी सिफारिस करके कलकत्ता चिठी भेज दी और जितने उप-

देश हो सकने थे सभी लिख बैठा और जब उनका कुछ भी जवाब न पाया तो एक दिन धीरे-धीरे मैं भाभीकी याद भी भूल गया ।

एक जमाना आया जब मैं नौकरी चाकरीसे इस्तीफा देकर घर गया, सोचा था घर न जाऊंगा, मगर कौन रहा है हमेशा ही घरसे बाहर । मातृभूमिका आह्वान एक न एक दिन सभीको सुनना पड़ता है ।

घरपर अपने सगे सम्बन्धी, गांवके लोग मेरे आनेकी खुशीमें खुश थे, कई सालोंके बाद उनका वेटा विदेशसे घर लौटा था, कोई आदर कर रहा था, कोई पटकार भी रहा था, कोई अपनी विपदाएं सुना रहा था, कोई मुसीबतोंके दिनोंका बखान कर रहा था, यह सब बातें छोटे-छोटे बच्चोंकी राजी-खुशीकी रस्मोंसे आरम्भ होती और आंसुओंकी झड़ियोंके साथ समाप्त हो जातीं । इन दुःख गाथाओंमें अपनी सहानुभूति प्रगट करनेके सिवा मेरे पास और क्या था ? मगर कभी-कभी कुछ वृद्धायें जिस प्रश्नको मेरे सामने रखतीं उसका मेरे पास कोई जवाब न था, वे पूछतीं—‘अरे ! अब आये तो क्या आये ! उस वक्त शादी करके एकाध औरतको यहां पटका होता तो आज रोटी पानीका सहारा तो होता ? अब कौन खिलायेगा, भाई-बंध किसके देते हैं रोज-रोज ! अजी ऐसा भी क्या रुपया कमाना है ! घरबार छोड़ जन्म-भर परदेशी ही बने रहे ।’

मेरा मुंह चुप ही रहता मगर इस प्रश्नका भी जवाब उन्हें मिल जाता । कुछ लोग कह दिया करते—‘चलोजी ! घर लौटके तो आये !! रोटी-पानीका गुजारा तो भगवान चला ही देगा, हमें तो खुशी इस बातकी है कि एक दफे उसे देख तो लिया !’

सौगात

मेरे लिये अपना घर, अपना मकान, अपना गांव, गांवके लोग सभी नये थे। बहुतोंको तो मैं पहचानता था, पर अधिकांश मेरे लिये नये थे। गांववालोंने अपने पुगाने भोंपड़े अब नये बना लिये थे, नई तिचारियां बन गई थीं, नये नये लोग, नये नये बच्चे-कच्चे, नई-नई बहुए, नाती पोते सभी नये थे। पर गांवके परले सिरेपर जो पुराना भोंपड़ा था, वह अभी तक जैसाका तैसा ही था। सारा गांव ; यहां तक कि अछूतों तकके घरोंमें नवीनताकी लहर छाई हुई थी, पर वह भोंपड़ा अभी तक अपनी प्राचीनताका निदर्शन स्वरूप जैसाका तैसा खड़ा था। मेरी आंखें उस नवीनताकी लहरमें लौटकर उसी पुराने भोंपड़े पर अटक जाती और मुझे कुछ भूला-भूली-सी याद आने लगती हैं। बहुत देर बाद मेरे मुंहसे निकल ही पड़ा—‘शायद दिवान भैयाका ही घर है वह !’

मेरे सामने एक अश्वत्थ विधवा बैठी थी, मैं उन्हें पहचान न सका था कि मैंने उन्हींसे पूछा—‘दिवान भैया वालोके क्या क्या हाल-चाल हैं ? वही है न उनकी भोंपड़ी ?’

विधवाके पास ही बैठी गांवकी एक बूढ़ी दादीने उत्तर दिया—‘अरे पहचाना नहीं ? तेरे सामने तो बैठी हुई है दिवानकी बहू ।’

आश्चर्यचकित होकर मैंने कहा—‘अरे भाभी !’

भाभीका स्वर गीला था—‘अच्छे हैं देवरजी ?’

मैंने उनके पैर छूकर प्रणाम किया। मेरे मुंहसे सिर्फ इतना ही निकला—‘क्या दिवान भैया ?.....’

पास बैठी दादीने उत्तर दिया—‘आज दश-बारह वर्षका अर्सा हो चुका है, बेचारी भाग्यवान बन चुकी है।’

मैंने कहा—

‘क्यों, क्या हुआ?’

‘होना क्या था मुझे उस वक्त कलकत्ते ले जाते तो एकबार उन्हें देख तो लेती?’

‘वे क्या सबसे घर आये ही नहीं?’

‘घर न आते और जिन्दा रहते।’

और भाभीने फूट फूटकर रोना आरम्भ किया, मेरा दिमाग सन्न रह गया, सोचने लगा अगर पहुँचा ही देता तो क्या नुकसान हो जाता, मैंने पूछा—क्यों भाभी क्या हुआ था उन्हें?’

‘होता और क्या दस बारह वर्ष तक तो कोई चिंटी ही नहीं आई और जब आई तो मैं क्या जानती थी कि मेरा भाग फूटा हुआ निकलता है।’

अफसोसकी सांस लेकर रह गया, क्या कहता भाभीसे? किसकी सहानुभूतिने किसका दर्द मिटाया है, कहने लिये भी मेरे मुँहसे एक शब्द नहीं निकला, जीवनके बहुतसे अच्छे-बुरे दिनोंमें यह भी एक दिन था।

दिन गुजरते जा रहे हैं, जीवनकी प्रतिक्रिया चलती जा रही है। आजकल भाभी आकर रोज अपने हाथसे मुझे खाना बनाकर खिला जाती है, मुझे दोनों शाम मेरी एक भूलकी याद दिला जाती है। लोग आपसमें काना-फूँसी किया करते हैं—‘जन्म भर तो निगोड़ा अनव्याहा रहा, अब बुढ़ाईमें सूझी है प्रेम करने की।’

सौगात

भाभी भी कभी-कभी कह दिया करती है—‘क्यों देवरजी, अब दुनिया क्या कहती है ?’

और मैं कह दिया करता हूँ—‘भाभी, दुनियां तो अन्धी है ।’

मगर भाभी भी जानती है और मैं भी जानता हूँ कि हमारा आपस में क्या सम्बन्ध है ।

जनवरी १९४१

वे आंखें

अच्छे-अच्छे आरामदेह और अप-टु-डेट होटलोंसे ज्यादा आराम मुझे भाई साहेब—यानी मैं उन्हें भाई साहेब ही कहता हूँ—के घरपर मिलता है। बात दरअसल यह है कि उनके स्नेहने मुझे जीत लिया है, और यही कारण है कि मुझ जैसे आदमीपर उनका शासन बड़ी आसानीसे चल जाता है। बम्बई जानेपर मैं यह सोच भी नहीं सकता कि उनका मकान छोड़ मैं अन्यत्र रहनेकी कल्पना करूं। बात-बातमें वे मेरी तकलीफ पूछते हैं, बम्बईके लायक खाने-पीनेका इन्तजाम ठीक-ठीक रखते हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वे अपना सब काम-काज छोड़कर मेरे ही पीछे, मेरे ही आरामके लिए तत्पर रहते हैं। मैं भी कभी-कभी उनकी सहानुभूतियोंसे दबा हुआ कह दिया करता हूँ—‘भाई साहेब ! आप बहुत अच्छे आदमी हैं।’ और भाई साहेब भी इस प्रशंसाको ग्रहणकर एक सुन्दर प्रसन्नतामें मेरे ही वाक्यको दोहरा देते हैं—‘आप बहुत अच्छे आदमी हैं।’

सौगात

उस दिन शायद रविवार था। जुहूपर स्नान करनेका प्रोग्राम भाई साहेबने मन ही मन तै कर लिया था। सवेरा भी न हुआ था कि चायका प्याला लिये वे मुझे उठा रहे थे—‘चलो आज जुहूका मेला भी देख लो और स्नान भी कर आयें।’

‘यह जुहू क्या चीज है?’ मैंने पूछा।

‘जुहू यदां समुद्रका सर्वोत्तम सैकतपूर्ण स्थान है। बम्बईके प्रायः सभी अच्छे-अच्छे लोग हर रविवारको वहांपर स्नान करने, सैर करने और पिकनिकपर आया करते हैं। जुहू बम्बईका एक अत्यन्त दर्शनीय स्थान है।’ भाई साहेबने कहा।

मैंने कहा—‘इतने सबेरे, और फिर खुले समुद्रमें स्नान करना क्या अच्छा होगा?’

‘समुद्रका पानी इस वक्त गरम रहता है।’ वे बोले।

मैं चुपचाप चा पीने लगा। अब कोई चाग नहीं था कि समुद्र स्नान न किया जाय। वास्तवमें मेरी इच्छा न थी कि इस अमूल्य समयको समुद्र स्नान जैसे व्यर्थके काममें बर्बाद करूं। मगर दुख यही है कि इस समयकी अमूल्यता मैं भाई साहेबपर प्रकट नहीं कर सका। चाय पीकर भाई साहेबके साथ हो लिया।

कुछ ही दूर जाकर भाई साहेबने कहा—‘देखो, हमारे पड़ोसी भी तो जुहू जा रहे हैं।’

आगे-आगे जाते हुए मैंने उन पड़ोसियोंको देखा, उनमें उस गेहुँये रंगवाली युवतीको भी देखा। मेरा हृदय आनन्दसे उत्फुल्ल हो गया। मेरा तब स्वर्ण-प्रभात होता, जब मैं उस आकर्षक युवतीको, गोल-गोल

बड़ी-बड़ी आंखोंसे अपनी ओर एकटक निहारते देखता । उन आंखोंका आकर्षण मुझ जैसे उपेक्षाशील व्यक्तिको जबरन अपनी ओर खींच लेता । आज तीसरा दिन था कि मैं अपनेको एक नई दुनियामें विचरता अनुभव कर रहा था । वह सब काम करता, मैं भी सब काम करता, किन्तु एक-एक क्षण बाद हम दोनोंकी आखें चार हो जाया करती । लगता मानो वह अपना सब काम मुझे लक्ष्य बनाकर कर रही है ।

हम लोगोंकी आहट पाकर युवतीने पीछे देखा । मैंने गद्गद् स्वरमें कहा—‘भाई साहब ! आप बहुत अच्छे आदमी हैं ।’

भाई साहबने मेरी ओर देखा, बोले—‘यह जो हमारी पड़ोसिन युवती है, इतनी खुशी, इतनी बेरस और इतनी दबंग है कि.....’

‘कौन, युवती ! जो आगे आगे जा रही है ?’ मैंने पूछा ।

‘हां, यही ।’

‘क्या उससे आपका भगड़ा है ?’

‘नहीं, भगड़ा क्यों होगा ; मगर ऐसा नहीं लगता, जैसे हम पड़ोसी हों ।’

‘कभी आप लोग आपसमें बोलते नहीं ?’

‘बोलना क्या ? सिर्फ यह जानते हैं कि हम लोग एक दूसरेके पड़ोसी हैं ।’

‘मगर मेरा खयाल है भाई साहब, ये आपके पड़ोसी बहुत अच्छे आदमी हैं ।’

‘अरे अच्छे क्या हैं, यहांके सभी आदमी अच्छे ही दीखते हैं मगर भीतरसे होते हैं बड़े चालाक । अब यही लड़की है, दिखनेमें कितनी

सौगात

अच्छी है मगर अपने सास-ससुर, पति वगैरहको ऐसी डाटमें रखती है कि मालूम होता है सिंघनी है। और नौकरोकी तो ऐसी पूजा करती है कि बेचारे आंख नहीं मिला सकते। आज तो न जाने कहांस सूर्य उगा कि सास-बहू दोनों एक साथ जा रही हैं।’

‘मगर आज तीन दिनसे मैं भी यहां हूँ, मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं देखा?’

‘क्या मालूम क्या बात है, आजकल शान्त बनी हुई है।’

‘मालूम होता है इस युवतीको यह काई कष्ट है, इसीलिये उसका ऐसा व्यवहार होगा?’

‘अजी कष्ट क्या है, इतने बड़े घरकी वह अकेली बहू है, उस किस बातका कष्ट हो सकता है, उस किस बातकी कमी हो सकती है?’

‘रुपये-पैसेकी कमी—कमी नहीं होती भाई साहेब! कोई न कोई मानसिक कष्ट उसे जरूर होगा?’

‘अरे क्या मानसिक कष्ट, सब फजूल बातें हैं, वह है ही ऐसी!’

‘आखिर आप मानसिक कष्टको जीवनमें कोई स्थान ही नहीं देते? जीवनमें गति भरनेवाले तो यह मानसिक संघर्ष ही हैं। जिस दिन ये न रहेंगे उस दिन आदमीका जीवन चुक जायगा।’ मैंने आवेगशील होकर उत्तर दिया और चुप हो गया।

भाई साहेबने मेरी इतनी संजीदगीसे-भरी वाणीको मुस्कराकर हवामें उड़ा दिया और मुझे लगा कि वह जीवनमें दार्शनिककी तरह न चलकर एक दुनियादारकी ही सजगता ज्यादा लिये हुए हैं। उनमें जीवनका वह मूल्य नहीं है जो युगके महापुरुषोंमें आलोकित होता है।

और तब भाई साहेबने मेरे क्षणिक मौनको भंग करते हुए कहा—
‘वह देखो दो आखें’ तुम्हें निहार रही हैं !’

मुझे हंसी आ गई ।



घर पहुँचा तो फिर वह दोनों काली और सजीव आखें मुझे निहार रही थीं । मुझे कुछ सामान खरीदना था, क्योंकि मुझे उसी दिन कलकत्तेके लिए लौटना भी था । मैं कालबादेवी जानेके लिए स्टेशन गया ही था कि जैसे वही विशाल काली आखें वहाँपर भी मेरा इन्तजार कर रही है । मैं विस्मयसे देखने लगा । किन्तु देखने-सुननेका समय नहीं था । गाड़ी आ गई थी । मैं तीसरी श्रेणीके खचाखच भरे कमरेमें जा बैठा । युवतीके उसी कमरेमें प्रविष्ट होते ही मुझे न जाने कितने विचारोंने एक साथ घेर लिया । युवती बैठते-बैठते मुस्करा दी । मैं भयभीत-सा होकर जबरदस्ती मुस्करा दिया । हम दोनोंकी मुस्कराहट आस-पासके बैठे स्त्री-पुरुषोंको यही सूचित कर सकती थी कि हम दोनोंका लम्बा परिचय है । और इसी भावको जाहिर करनेके लिये मैंने इतने आदमियोंके बीच कह भी दिया—‘आप कहां तक जा रही हैं ?’

‘मैं जा रही हूँ...यही दादर तक !’

यह जाननेकी मुझे आवश्यकता ही नहीं थी कि उसके साथ कोई और भी है या नहीं, क्योंकि यहाँ यहाँ रिवाज है कि स्त्रियाँ एक स्थानसे अन्य स्थान तक अकेली ही आया-जाया करती हैं ।

क्षण भर सोचनेके बाद वह बोली—‘और आप ?’

सौगात

‘मैं भी वहीं तक, एक सूटकेस खरीदना था !’

युवती अपने हाथमें एक कापी नचा रही थी । मैंने धीरेसे उसे ले लिया । देखा उसमें बहुतसे रेखाचित्र बने हैं । उन्हें देखनेके लिये जबरदस्ती मैंने अपना ध्यान उस ओर लगा लिया ।

दादर स्टेशन आते ही युवतीने मेरा ध्यान भंग किया, बोली—
‘चलिए स्टेशन आ गया ।’

मैं चौंकर उठ बैठा और दोनों साथ उतरे । सूटकेसोंकी एक दूकान पर खड़ी होकर वह बोली—‘यहां अच्छे सूटकेस मिलेंगे ।’

‘मैं ले लूंगा ! आप कहां तक जायेंगी, आपको पहुँचा दूँ ?’
मैंने कहा ।

वह गुजराती युवती मुझे गलत समझ कर बोली—‘मैं चली जाऊँ ?’

इस प्रश्नका उत्तर और क्या हो सकता था कि, हां आप शौकसे जा सकती हैं, और कहीं सभ्यताके नाते मैं यही कह बैठता तो इतना जो परिचय बढ़ आया है, कुछ निकटता-सी महसूस करने लगा हूँ वह सब नष्ट होती है, और उसी द्वन्दमें मैंने कह दिया—‘मैं आपके साथ चलूँ ?’

‘नहीं आप पहले अपना सूटकेस ले लीजिये ।’ कहकर वह दूकानके अन्दर चली गई ।

काफी दाम देकर अच्छे-अच्छा सूटकेस खरीदना पड़ा ।

‘अब आप कहां जायेंगे ?’ बाहर आकर उसने पूछा ।

‘पहले आपको छोड़ आऊँ फिर घर लौटूंगा ।’ मैंने उत्तर दिया ।

वह बोली—‘अब मैं न जाऊंगी ।’

और तब उस युवतीने जो रुख अख्तियार किया, उससे यह प्रतीत

होने लगा कि इसके जीवनमें जो धीरे-धीरे उठ रहा है, और कहीं कुछ जो किनारेसे टकरा-टकरा कर रह जाता है, वह आज बाहर आ जाना चाहता है।

उसने व्यर्थकी बातें शुरू कीं और उनको पहुँचा दिया उस सांस्कृतिक स्तर पर कि मैं तो अवाक् रह गया।

वर्तमान पारिवारिक जीवनके विग्रह, दैन्य और समाजमें नारीके रोलको लेकर उसने अपने अन्तरकी व्यथाको उड़ेल दिया।

मुझे यह चीज स्पर्श कर गयी। मैं पूछ बैठा—‘आखिर आप क्या चाहती हैं?’

‘मैं...आप देंगे?’

‘जरूर।’

‘मैं...आपका एक फोटो अपने पास रखना चाहती हूँ।’ वह लज्जित-सी होकर बोली।

‘लेकिन फोटो तो इस वक्त है नहीं, कहिये तो घरपर जाकर भेज दूँ?’

‘क्या मालूम भेजेंगे कि नहीं?’

‘नहीं, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ जरूर भेज दूंगा। मगर कैसे भेजूँ बता दीजिये?’

‘मैं आपके पास एक बच्चेको भेजूंगी, उसीके हाथ फोटो दे दीजिएगा।’ यह कह वह अपने घर जानेके लिये दूसरे रास्तेसे हो ली।

हम दोनों अलग-अलग रास्तेसे एक ही मकानपर पहुँचे।



सौगात

कीमती सूटकेस हाथमें देखकर भाई साहेब इतने बिगड़े कि उन्होंने कह डाला—‘क्या सूटकेसोंका व्यापार करना है ? एक कल खरीदा और एक आज । आखिर यह तूफाने बदतमीजी क्यों ?’ मैंने उनको एक ही उत्तरमें शान्त कर दिया । कहा—‘एक दोस्तने मुझसे मंगाया है । उसका है यह ।’

यह सुनकर वह चुप हो गये और मेरे जानेके लिये मेरा सामान वगैरह ठीक करने लगे । मैं कुछ जलपान करने लगा । अभी मैंने चायका प्याला होठोंसे लगाया ही था कि मैंने कमरेके दरवाजे पर एक लड़केको देखा । उसके हाथमें एक पत्र था । भाई साहेब उस ओर झपटे, लेकिन मैंने पहिले ही आगे बढ़कर उसके हाथसे वह चिट्ठी ले ली और खोलकर पढ़ने लगा ।

प्रिय.....

मैं जीवनमें आपको कभी नहीं भूल सकूंगी । और उन क्षणोंको जो मैंने आपके साथ व्यतीत किये हैं—उनको तो कभी नहीं । लगता है कि मुझमें एक असीम और अपार उल्लास भर गया है । वर्षोंसे मैंने जीवनमें आनन्द नहीं पाया । उस दिन आपके नेत्रोंकी वह आलोकमयी दृष्टि देखकर मुझे लगा कि मेरे बुझे हुए जीवन-दीपको किसी अज्ञात स्नेहने आलोकित कर दिया है । मैं फिर युवती हो गई हूँ । मैं बहुत खुश हूँ कि आप ऐसे हैं । और दुनिया ? यह तो बड़ी अजीब है । यह तो उसे स्वीकारती है जिसका कोई अस्तित्व नहीं है । जिसका है, उसे यह स्वीकारती नहीं ।

और अधिक क्या लिखूं आप मेरे जीवन-सागरमें आशा और

उल्लासकी हिलोर् लेकर आये हैं। लगता है जिस जीवन जहाँ में हमेशा अवसाद और एक खोखलापन छाया रहता था आज वहाँ जीवन की पूर्णिमा खिल गई है, एक उजली-सी चांदनी।

मैं भी अपना फोटो भेज रही हूँ, आप भी इसी बच्चेके हाथ अपना फोटो अवश्य भेजें। वह मेरे लिये एक स्मृति होगी—जीवनका नूतन रूप। मेरी एक ही अभिलाषा !

मैं आपसे पत्र भेजनेका अनुरोध करती, किन्तु.....मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि उस आनन्दका उपभोग मेरे घरवाले न करने देंगे। अपने हृदयके किसी कोनेपर मेरी स्मृतिको अवश्य स्थान दीजिएगा।

सस्नेह आपकी

.....

पत्र जितना लम्बा था, पढ़नेमें मुझे देर न लगी। मैं आश्चर्यमें था कि यह क्या हो गया और कैसे हो गया। इतिहास परिवर्तनकी तरह यह कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन तो नहीं था लेकिन एक नवयुवतीके जीवनमें यह परिवर्तन क्या कीमत रखता है ; यह मैं जान लेना चाहता था। लेकिन मैं खोता जा रहा था और कभी आंखोंके सामने मुझे ऐसा लगता कि मेरे सामने यौवनका वह तकाजा, वह अर्घ्य नाच रहा है जो वह युवती मुझे अर्पण करना चाहती थी। लेकिन मैं...

और तभी भाई साहेबने मुझसे वह पत्र और वह चित्र लपककर खींच लिया।

और इसी आश्चर्य और उलझनके वातावरणमें मैं उस बच्चेको अपना चित्र देना भूल गया। वह चला गया था। मैं भी चला आया।

सौगात

आते वक्त उसकी हताश आंखें मेरी ओर थीं, जो शायद पूछ रही थीं— क्या हुआ मेरी चीजका ? और मैं चला आया बिना उत्तर दिये ही ।



आज भी वे दो विशाल काली आंखें मेरी आंखोंके सामने मुस्करा जाती हैं—मानों गिलाकर कहती हैं और आपने अपना...

और तभी मैं अवसादके अन्तरिक्षमें अपना चेहरा छिपा लेता हूँ ।

नवम्बर १९३६

हम नगरवासी

हम नगरवासी जब कभी किसी गांवमें पहुँच जाते हैं, तो हम उस गांवको अपने शहरोंमें रोज दिखाये जानेवाले सिनेमाओंका एक दृश्य समझते हैं। वहांकी प्रत्येक चीज हमारी आंखोंके सामने एक कटु-व्यंग, एक कठोर उपहासका साधन बनकर आती है। वहांका सम्पूर्ण वातावरण ही हमारे लिये एक जीवित व्यङ्ग साधन होता है।

जीवनमें जब हम ऊब जाते हैं, कुछ कटुता और विषमतासे जब हमें अपनी जिन्दगी खोखली लगने लगती है तो हम अपनी व्यंग-कामना को उत्तेजन देनेके लिये गांवकी ओर चल देते हैं।

मैं भी उस गांवमें तब गया जब मेरे जीवनमें एक उदासी भर गई थी।

गांवके भीतर घुसते ही मुझे दो बड़ी-बड़ी काली आंखोने देखा। वे आंखें, वह दृष्टि जैसे सब मुझपर हावी हो जाना चाहती थीं।

वह अपनी समस्त भावनाओंके और, अपनी समस्त कामनाओंके साथ, एकटक मुझे देख रही थी। उस दृष्टिमें दूरीको छेद जानेकी इतनी तीव्रता थी कि मुझे लगा मानो उसका समस्त संचित यौवन और प्यार उस विभोर मूक दृष्टिके द्वारा मुझसे कुछ कहना चाहता है।

सौगात

हम उस ग्राम्य भोजनालयमें बैठे भोजनके बाद दुपहरीकी कड़कती धूपाली बेलाको कभी गानेमें कभी रिकार्ड बजानेमें अतिवाहित कर रहे थे । मैंने उस उजाड़ ग्रामके उदासी-भरे वातावरणको रिकार्डोंकी ध्वनिसे ही स्निग्ध और सजग बनाया था और यही कारण था कि मेरे आस-पास जहां ग्रामके बच्चे और वृद्ध पुरुष एकत्रित थे वहां उस मकानके पिछवाड़े में ग्राम्य-स्त्रियां अपने-अपने बच्चोंको गोदमें लेकर खड़ीं मुझे नवीनको देख रही थीं—कैसा है ये, कहाँसे आया है, क्या करने आया है, क्यों आया है और आया है तो क्या कर रहा है—सभीमें काना-फूसी हो रही थी । अपनी-अपनी आलोचनाएं वे एक दूसरेको सुनाती जा रही थीं । कोई कटाक्ष कर रही थी तो कोई खुश हो रही थी । आश्चर्यकी छाया प्रत्येकके मुखपर छाई थी । किन्तु वह अकेली, अलग ही मुझे देख रही थी । मेरी दृष्टि सभी पर पड़ी थी पर उनके बीच वह देर तक ठहर न सकी । वह जाकर ठहरी उसी अकेली पर—बहुत छोटी-सी, तेरह वर्षसे अभी वह ऊपर न थी, ग्राम्य भोलापन था उसके मुंहपर; किन्तु आश्चर्य नहीं था उसके चेहरेपर ; थी एक तन्मयता, एक भावना एक अत्यन्त आनन्द, मानो वह अपने समस्त सौंदर्यको उसी समय मुझे दे देना चाह रही थी । और मैंने उसे देखा । उसने नजर नीची कर ली—मुस्कान भरी नजर ।

ओह, तो इन्हें भी प्रेम करना आता है ! कंगाल-सी शक्ल बनी है और प्रेम ! कितनी विषमता ! मैंने रिकार्ड बन्दकर दिये, सभी अपने-अपने घर चले गये । वह भी चली जाय ; वह भी यहां न रह सके, वह भी मुझे न देख सके इसी ख्यालसे मैं लेट गया । उसकी

तरफ दृष्टि जाती और मेरा मन एक अजीब शहरी कुलीनताकी घृणासे अभिभूत हो जाता। मैं अपनी दृष्टि हटा लेता, लेकिन यौवनके आकर्षणकी सरलता मैंने पहिले कहीं देखी है, इसका गुमान मुझे नहीं। मैं देखूं या नहीं देखूं, इसी अन्तर्द्वन्द्वमें मुझे नौद आ गई।

किन्तु नौदके बाद जब मैं उठा तो मैंने देखा वह अकेली एक छोटे-से बच्चेके साथ वहीं पर खेल रही है। मेरे देखते ही वह पुनः कठिन होकर खड़ी हो गई। आंखे चार होते ही वह मुस्करा दी। मैं कौतूहलवश उसकी ओर एकटक देखने लगा। इसी वक्त एक अधेड़ स्त्रीने आकर चिल्लाते हुए कहा—‘तू मर गई थी री चन्दा, कितनी चिल्ला रही हूँ! तेरा मुंह बंद कर दिया भगवानने?’

और चन्दा बच्चेको गोदमें उठाकर डरके मारे सिकुड़ गई थी।

अधेड़ स्त्रीने मारनेको हाथ उठाया। चन्दा डरसे मेरी खिड़कीकी ओर चली आई। अधेड़ स्त्री उसके पीछे-पीछे आई। वह दौड़ पड़ी और मेरी खिड़कीके तार पकड़ कर खड़ी हो गई। भयभीत हरिणी की भांति वह कभी मेरी तरफ और कभी उस स्त्रीकी तरफ देखती। किन्तु उस स्त्रीने वहींपर आकर तीन-चार तमाचे चन्दाके गालोंपर जमा दिये। बच्चा हाथसे छीन लिया, और बोली—‘हरामजादी! तू जन्मते ही मर क्यों नहीं गई।’ और फिर मारनेको उसने हाथ उठाया।

मैंने कहा—‘क्यों मारती हो उस बेचारीको?’

वह बोली—‘तीन घन्टेसे चिल्ला रही हूँ, जवाब ही नहीं देती।’

मेरे साथ जो सज्जन बैठे थे, वे बोले—‘अरे जाने भी दो, इसको क्यों नहीं तुम कहीं बाहर भेज देती। रोजकी खिच्-खिच् अच्छी नहीं लगती!’

सौगात

चन्दा उस समय बड़े-बड़े आंसू गिराती हुई उन सज्जनकी ओर देख रही थी। उन आंसुओंको देखकर मुझे लगा मानो उसके वर्तमान जीवनकी समस्त विवशता टपक पड़ी हो।

अधेड़ स्त्री बोली—‘कहां भेजूं, मर जाती तो छुट्टी हो जाती !’

वे सज्जन बोले—‘इसकी शादी कर दो अभीसे।’

मैंने कहा—‘क्यों, क्या बात है ?’

वह बोले—‘अरे बाबू ! सौतिया मां है, दोनोमें बनती नहीं—रोज कुछ न कुछ होता ही रहता है। अरे हां, आप इसे ले जाइये। सिनेमामें लगा दीजिये, काम तो कर ही लेगी। गाना भी जानती है।’

जरा ठण्डी पड़कर अधेड़ स्त्रीने मेरी ओर मुखातिब होकर कहा—‘बाबू कहांसे आये हैं ?’

उक्त सज्जन बोले—‘बाबू सिनेमामें काम करते हैं, इसको कहीं लगा देंगे ; पैसा खूब मिलता है वहां। क्यों बाबू, ले जायेंगे न ?’

चन्दाकी माने कहा—‘बाबू ! जीका जंजाल हो रही है। ले जाइये इसे, जन्म भर तुम्हारा एहसान मानूंगी ! यह नखरे खूब जानती है।’

मैंने विनोदमें हंसते हुए चन्दाकी ओर देखा। उसकी आशा भरी दृष्टि मेरी दृष्टिसे मिली। उसने नजर नीची कर ली। मैंने उसी विनोदके स्वरमें कहा—‘क्यों लड़की, चलेगी मेरे साथ ?’

उसकी माने कहा—‘जायेगी बाबू ! जायेगी क्यों नहीं।’ चन्दा चुप रही। पैरके नाखूनसे वह जमीन कुरेद रही थी।

मैं हंसकर चुप हो गया। चन्दाकी मां बिना मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही उसे खींचकर वहांसे ले गई।

साथवाले सज्जन बोले—‘सचमुच बाबू ! ले जाइये बेचारीको, उसका भला होगा । बड़ी मुसीबतमें है । उसकी सौतिया मां एक डाइन है, मार-मारकर लड़कीका उसने सत्यानाश कर दिया है । वह लड़की बड़ी सीधी है, घरका सारा काम करती है फिर भी उसे मार पड़ती है !’

‘उसके बाप नहीं हैं ?’ मैंने पूछा ।

‘अरे साहब ! बाप होता तो उसकी यह दशा होती ? वह तो बेचारा देवता आदमी था !’

मैंने कहा—‘तो मैं क्या कर सकता हूँ, आप गांववालोंको चाहिये उसकी रक्षा करें !’

वह बोले—‘आप नहीं जानते बाबू साहेब ! हम अगर कुछ बोलें तो उलटी गालियां खानी होंगी । इन गांवोंका कारबार आप लोग नहीं जानते ! मगर क्या आप उसे सिनेमामें नहीं ले जा सकते ?’

मैंने कहा—‘अरे आप भी क्या बातें करते हैं, वह भला क्या काम करेगी सिनेमामें ? सिनेमा कोई दिल्लगी है !’

वे सज्जन बोले—‘हां बात ठीक है वहां तो पढ़े-लिखे और खूबसूरत आदमियोंका काम है । इसको कौन पूछेगा वहां—मगर आप थे न, जरा कह देते तो उसका भला हो जाता, इसीलिये कहा !’

मुझे उन सज्जनके आग्रह और अनुरोधने कुण्ठित कर दिया । मैं समझ नहीं सका कि मैं उन्हें क्या उत्तर दूं । मुझे लगा कि कह दूं—आप जिन्दगीको मौज समझते हैं कि उसी वक्त उसी पिछवाड़ेवाले खेतसे चन्दाने आकर उन्हीं सज्जनसे पूछा—‘काका ! कब जा रहे हैं ?’

सज्जन मेरी ओर मुखातिब होकर बोले—‘ये लीजिए, वह तैयार है । पूछती हैं कब जायेंगे आप !’

सौगात

मैंने पुनः विनोदमें कह दिया—‘कहिए रातको ७ बजेकी गाड़ीसे !’

वे बोले—‘तो क्या ले जा रहे हैं उसे ?’

मैंने कहा—‘अरे, आप भी हद करते हैं !’

चन्दा तब तक जा चुकी थी । उसने हमारी बात नहीं सुनी !

रातको ७ बजे जब मैं अपने सामान आदिके साथ स्टेशनपर पहुँचा तो देखा चन्दा एक छोटी-सी गटरी लिए प्लेटफार्मके बाहर ही मेरी इन्तजारी कर रही है । मैं उसे देखकर चकित रह गया । वह सच ही आ जायेगी, यह कल्पना भी मैं नहीं कर सका था ।

मैंने देखा, चन्दा इस बार जिस मैली-कुचैली साड़ीको पहने थी, उसपर पिछली साड़ीकी तरह पथलियां नहीं लगी थी ! केवल वह जगह-जगह सिली थी । एक कालेसे कपड़ेमें उसकी गटरी बंधी थी । सिर भी उसका बंधा था । शायद वह इस वक्त अपने सबसे अच्छे लिबासमें आई थी और उसे विश्वास था कि वह गांवमें सबसे ज्यादा सुन्दरी दीखती है !

मैंने पूछा—‘क्या है री लड़की ?’ उसने आखें नीची कर ली ।

क्षण-भर मैं उसे देखता रहा । उसकी सौम्य, सरल मुखाकृतिपर मुझे दया आ गई थी, मगर मैं लाचार था । मैंने पाँच रुपयेका एक नोट निकालकर उसके हाथमें देकर कहा—‘जाओ !’ मैं आगे बढ़ा । वह मेरे पीछे आने लगी ।

मैंने डपटकर कहा—‘यह क्या बदतमीजी है, कहाँ जा रही है ?’

वह खड़ी रह गई ! दो-एक यात्री भी खड़े रह गये । मैंने कहा—‘यह पागल है मेरे पीछे आ रही है । जरा इसकी शक्ल देखो, सिनेमा में काम करेगी ।’ सबके सब हस पड़े और मैं आगे बढ़ा । चन्दाने वह नोट मोड़कर जोरसे मेरी ओर फेंक दिया और दोनों हाथोंसे अपने मुँहको ढांप वह दीवालके सहारे खड़ी होकर रोने लगी । मैं गाड़ीमें बैठ गया । गाड़ी चल दी । मैंने देखा कि चन्दा अब भी रो रही थी ।

दिसम्बर १९३६

भाभी

रामूने जिस दिन अपने बड़े भाईकी शादीका तार पाया, उस दिन उसका दिल बांसों उछलने लगा, भाभीके दर्शन-मात्रकी कल्पनासे वह गद्गद् हो जाता, मन-ही-मन कल्पनाओंका अम्बार खड़ा कर लेता और सोचता—भाभीको देखते ही पहले यह कहूँगा, पहले वह कहूँगा; भाभी जब किसी काममें लगी होगी तो चुपचाप भरा लोटा-पानी का उसके सिरपर उड़ेल दूंगा, खूब हंसी होगी, खूब टिठोली होगी, और भाभी भी जब ऐसा मौका देखनेकी फिराकमें फिरेगी, तो मैं ऐसा मौका आने ही न दूंगा और बेचारी भाभी कहेगी—‘तुम बड़े दुष्ट हो !’

और रामूकी कल्पनाओंने एक दिन साकार रूप धारण किया । उसके बड़े भाईकी जिस दिन बरात घर लौटी तो उस दिन रामू मनकी कल्पनाओंके बीच चढ़ता-उतराता मौका खोज रहा था कि भाभीको प्रणाम तो कर लें, किन्तु मौका जल्दी ही आ गया । रामू किसी कामसे उस कमरेमें गया, जहां गांवकी सब लड़कियां भाभीको लक्ष्मीका रूप समझ कर घेरे हुए थीं । छोटी बहन रमाने रामूको देखते ही कहा—

‘भैया, भाभी तुम्हें देखना चाहती थीं, तुम आ गये अच्छा हुआ !’

सौगात

‘क्यों मुझे क्यों देखना चाहती थीं ?’

भाभीने रमाके कानमें कुछ कहा, रामूने सुना नहीं। रमा बोली—
‘भाभी कहती हैं, बग़ातमें रास्ते भर तुमने उन्हें पूछा तक नहीं,
क्या यही देवोंका काम है ?’

‘रास्ते-भर पूछनेवालोंकी कमी नहीं थी, फिर देवोंका काम देखनेका
है, पूछनेका नहीं। हमने तो खैर रास्तेमें नहीं पूछा, पर भाभीसे पूछो,
उन्होंने अपने घरपर मुझे कितनी बार पूछा ?’

रमाने स्वयं ही उत्तर दे दिया—‘तो वहां बेचारी क्या पूछतीं, उन्हें
अपनी भी होश थी ?’

भाभीने फिर कुछ कहा—जिसे रामूने नहीं सुना और रमा बोली—
‘भाभी कहती हैं, पूछा नहीं तो पुछवाया तो जरूर है, रंग जिसने
छिड़का उसने क्या पूछा नहीं ?’

‘ओः तो वह रंग फेंकनेवाली लड़की भाभीजी की चेली थी—
अच्छा भाभीजी, इसका बदला न लिया तो कहना ।’

भाभीजीने अब की मुंह खोला, बोलीं—‘जिसने रंग फेंका था, उसी
से बदला लेना चाहिए था, इसीलिये तो उसे भेजा था ?’

‘मैं भला आपके गांवमें उससे क्या बदला लेता भाभी ? पहले
आप अपने मुंहका पर्दा तो हटाइये, फिर बात कीजिये ।’

भाभीने तो नहीं, पर रमाने पर्दा हटाया। भाभीजीका दिव्यरूप
हल्दी-मिश्रित अंगरागसे चौगुना चमकता हुआ सामने आ गया !
अत्यन्त गम्भीर मुस्कानके साथ उन्होंने रामूकी ओर देखा। रामू उन्हें
पहले ही से देख रहा था। भाभीने कहा—

‘मालूम होता है, आप बहुत बड़े बहादुर हैं, वहां तो दूसरा गांव हो गया था और यहां तो जैसे मेरा अपना ही गांव है ! मुझसे बदला लेनेकी आप अपने ही घरपर सोच रहे हैं ?’

‘नहीं, यह बात नहीं, मेरा मतलब है अब उसने तो मेरे स्नान करते करते रंग फेंका, मैं भला उस वक्त क्या करता ?’

‘अच्छा खैर, पर देख तो लिया था न उसे ?’

‘क्यों नहीं, मनमें तो आया था कि हाथका पानी भरा लोटा मार दूं उसके बदन पर ; मगर खांमाखां लोग कहते, दूसरेके गांवमें लड़कियोंसे छेड़छाड़ करते हैं और वह भी बनड़ेके भाई होकर ! इसीलिये सोच-समझ करके चुप हो गया ?’

‘तो है पसन्द ?’ भाभीने पूछा —

रामूने कहा—‘क्या ?’

‘वही लड़की ?’

‘मतलब ?’

‘मतलब और क्या, एक दिन वह मेरी देवरानी बनेगी, वहां भी वह जिस तरह मेरी सहेली है, अगर यहां भी उसी तरह हम दोनोंका मेल रहा तो मैं तो धन्य हो जाऊंगी, आपको उसीसे शादी करनी होगी, वह बहुत अच्छी लड़की है, कहती थी.....! और भाभी चुप हो गई !’

रामूने कहा—‘क्या कहती थी ?’

रामूके इस प्रश्न पर रमासे लेकर जितनी भी लड़कियां वहांपर बैठी थीं सभी ठहाका मारकर हंस पड़ीं । रामू लज्जित हो गया । वह वहां खड़ा न रह सका और बाहर चला आया ।

सौगात

हंसी-दिल्लीगीकी कल्पनाओंको रामू भूल गया, उसे अब सिवा इसके कि वह रंग फेंकनेवाली कौन थी ? उसने क्या कहा ? भाभीसे पूछूं ? पर भाभीकी गम्भीर आकृति और पता लगने पर गांव भरकी दिल्लीगी, इन्हीं बातोंके सोचनेमें वह चक्कर काटने लगा ।



दिन गुजरे, समय आया और रामूकी शादी भाभीकी ही मर्जीपर विद्यासे सम्पन्न हो गई । विद्या रामूको पाकर फूली न समाई । जिठानी के गलेसे लगकर बोली—‘दीदी, तुमने मेरा दिल रखा, मैं तुम्हारी साख रखूंगी !’

‘देख विद्या, रामूबाबू कुछ लापरवाह हैं, उन्हें ठीक रास्तेपर लाना तेरा काम है, जो कमाते हैं सब खा-पीकर उड़ा डालते हैं । आज हमारे दो बच्चे हो गये हैं, कल तुम्हारे भी होंगे । कुटुम्ब-परिवार बढ़ेगा, कपड़े-लत्तेकी जरूरत पड़ेगी, एक आदमीसे क्या हो सकता है, तुम उन्हें समझाना, अगर ऐसा ही रहा तो काम कैसे चलेगा ?’

विद्या यहां इस घरमें देवरानी थी, पर अपने गावोंमें तो वही एक दिन भाभीकी सहेली थी, वह उन्हें बहुत चाहती थी, प्यार करती थी, उनके बिना एक क्षण नहीं रहती थी, पर आज वही सहेली उसकी जिठानी थी । उसके उपकारके भारसे वह दबी जा रही थी, विद्याने उस दिन रामूको देखकर कहा था—‘किसके भाग खुलेंगे जो इनसे शादी करेगा ?’

और भाभीने वचन दिया था—‘उस घरमें जाते ही मैं सब ठीक करा लूंगी, मेरे देवर ही तो हैं न ?’

और भाभीने सचमुच अपना वचन पूरा कर दिखाया । विद्याको मन-चाहा वर दिला दिया ! परन्तु यह मानवीय स्वभाव है किसीके उपकारको हम तभी तक याद रखते हैं, जब तक वह हमें कोई ऐसी बात नहीं कह बैठता, जिसमें हमारे मनमें ठेस लगती हो ।

जिठानीका यह उपदेश विद्याके मनमें ठेस लगनेका कारण बना । जीवनकी सबसे बड़ी साधको पूरा करके भी जिठानी देवरानीको उपदेश देनेकी हकदार नहीं ! उसे क्या हक है कि वह उसके पतिको लापरवाह कहे ? मगर विद्या कुछ बोली नहीं उसका मन खिन्न हो गया ! इस खिन्नताकी स्पष्ट छाया भाभीने विद्याके मुंहपर देख ली, उन्हें इस खिन्नता पर पश्चाताप नहीं हुआ और न दया ही आई बल्कि आया क्रोध और उस क्रोधको बिना दबाये ही उन्होंने कहा—‘विद्या, तुझे शर्म आनी चाहिये, क्या मैं तेरे बुरेके लिये कहती हूँ ।’

विद्याने कहा—‘दीदी ? आखिर मेरे यहां आते ही तुम इस तरह क्यों बिगड़ गई ? मैंने क्या किया ? वे क्या फूंकते हैं और क्या कमाते हैं ? मुझे क्या मालूम ?’

चिढ़कर भाभीने कहा—‘तो क्या मैं झूठ बोलती हूँ—मुझे क्या ? तुम लोग एक हाथ कमाओ, दस हाथ खर्च करो—फूँको !’

विद्या कुछ कहना चाहती थी, पर नहीं बोली, चुप रही ।

रातको चुपचाप एक चिठी रामूके लिये लिखी—‘मैं यहां नहीं रह सकती, मुझे भी अपने पास बुला लो !’

चिठी पाते ही रामूका दिमाग सन्न हो गया । मेरी स्त्रीसे कोई बुरा बर्ताव क्यों करता है ? भाभीसे ऐसी आशा नहीं । भैया देवता

सागात

है, उन्हें किसी पर बिगड़ते तक देखा नहीं, फिर विद्याको क्या दुःख है ? वह सोच ही रहा था कि दूसरे दिन उसके पास भैयाकी चिठी आई, उसमें लिखा था—‘घरमें अपनी स्त्रीको चिठी लिख दो, जरा काम काजमें मन लगाया करें, हमारे कहनेसे वह बिगड़ जाती है, अच्छा समझो तो उन्हें अपने ही पास ले जाओ ।’

रामूने तारसे सूचना दी कि मैं घर आ रहा हूँ ।

रामू घर गया । विद्याने रोते-रोते कहा—‘मैं यहां नहीं रह सकती, अभीसे मेरा यह हाल है, जब दो बच्चे हमारे भी हो जायेंगे, तब तो क्या जाने क्या हाल होगा ?’

रामू स्वभावसे लापरवाह था, हरेक बातके अन्दर तक पहुँचना वह बेवकूफी समझता था. छान-बीनको वह लुप्तता समझता था । किसी पर भी गहरा विश्वास कर लेना वह गुण समझता था और जब विद्याने अपने दुखों और बच्चोंकी कहानी उसे सुनानी चाही तो वह बोला—‘देखो, मुझे ऐसी बातें पसन्द नहीं हैं, मैं घरके झगड़ोंकी एक भी बात नहीं सुनना चाहता ।’

विद्याने उसी रोनेके स्वरमें कहा—‘तुम्हीं अगर नहीं सुनना चाहते तो और कौन है जिसे सुनाऊं ?’



पांच-सात दिन घगपर रहनेके बाद रामू विद्याको लेकर विदेश चला गया, पर विदेशमें वह सुखी न रह सका । विद्या एक बच्चेकी मां होते ही रोग-शय्यापर पड़ गई और अन्तिम दिन तक न उठ सकी । उठती कैसे ? उसे विश्वास हो गया था कि रामू उसे कुछ भी नहीं समझता ।

अगर कुछ समझता ही तो उसके दुःख कष्टकी बातें भी उससे न पूछता । कभी दो घड़ी हंस-बोलकर उससे न मिलता । इसलिये तो रामूने जब उस दिन अपने आप ही कहा—‘विद्या, तुम्हें भाभीने बड़ा कष्ट दिया है न ? मैं अब उस घरको ही छोड़ दूंगा ! उस घरमें अब कभी पैर न रखूंगा !’

विद्या सुनकर जरा-भर प्रसन्न न हो सकी । उल्टे खिसियाकर बोल उठी—‘तुम्हारा फुसलाना क्या मैं समझती नहीं ? मैं सब जानती हूँ । क्या मैंने ऐसा कहा था कि तुम घर-बार ही छोड़ दो ?’

‘तो फिर तुम क्या चाहती हो ?’

‘जो मैं चाहती हूँ, वही अगर तुम करते तो आज यह हाल न होता, पर तुम्हें मेरी क्या परवाह ?’

‘तो तुम्हारा मतलब है, हम घरपर अलग-अलग रहें ?’

‘हां, मैं यही चाहती हूँ ।’

‘तुम गलत चाहती हो । अलग होनेपर भी भाभीका सताना तो छूटेगा नहीं, घर तो आखिर एक ही होगा । वे कई किस्मसे सता सकती हैं । तुम्हारे बच्चेको बात-बातमें फटकार सकती हैं ।

‘हाय हाय ! ऐसे अविश्वासी न बनो । दीदी यहांपर नहीं हैं, उनका इस तरह अपमान करना अच्छा नहीं । यह तुमसे किस्ने कहा कि उन्होंने मुझे मताया है ? बच्चेको वे कभी नहीं डाट-फटकार सकतीं, उन्हें बच्चोंकी बड़ी भारी ममता है । मैं इतने दिन रही, क्या मैं नहीं जानती ?’

‘मगर तुम्हीं तो कहती थी कि...’

बात काटकर विद्या बोली—‘झूठ न कहो, मैंने उनकी कभी भी काट

सौगात

नहीं की। मैं जितने दिन उनके साथ रही, उन्होंने मुझे अपने बच्चोंकी तरह खिलाया-पिलाया, कोई चीज ऐसी नहीं, जो उन्होंने अपने बच्चोंको दी और मुझे न दी हो। वैसे तो वे मेरी सहेली हैं—एक दिन बिना मेरे उनके गले पानी नहीं उतरता था। आज वे मुझे देवरानी समझकर चाहे जो कहें, हमारे अच्छेके लिए ही तो कहती हैं।’

रामूने कहा—‘मैंने तो सुना था कि तुम्हें कितने ही दिन उन्होंने खाने तकको नहीं पूछा। बीमार होनेपर भी काम कराया?’

‘सब भूठ है! ऐसी लबार औरतें गांवमें बहुत हैं, जो दूसरोंका घर उजाड़नेके लिए भूट-सच एक करके पैतरे काटती रहती हैं। मेरे साथ उन्होंने सारा घरका काम अपने हाथों किया, बल्कि मेरे एक दिन बीमारी में काम करनेपर वे बिगड़ उठीं, बोलीं—‘मत उठ, मत उठ कहती हूँ, पर सुनेगी थोड़े ही। मैं उसकी दुश्मन जो हूँ, मेरा कहना थोड़े ही करेगी।’ उन्होंने क्या किया? तुम कमाते हो, नौकरी करते हो, घरमें एक पैसा भी न भेजोगे, तो कहेंगे नहीं? अकेले वह घरका खर्च कहासे पूरा करते रहेंगे? आज कहते हो, मैं घर छोड़ दूंगा! ओह, बड़ी बहादुरी करोगे! कल नौकरी छूट जायेगी, तो क्या करोगे?’

विद्या इस अशक्तवस्थामें भी यह सब कुछ एक सांसमें कह गई। रामू अवाक् विस्मित नेत्रोंसे विद्याकी ओर देखता रहा। उसका ख्याल था, विद्या भाभीसे बहुत चिढ़ी हुई है। गांवकी स्त्रियोंने जब विद्याकी दुर्दशाका वर्णन किया था, तो रामू उसी दिन कुछ-न-कुछ अनर्थ कर देनेवाला था, पर उसकी लापरवाही काम आई। वह घरपर कुछ न बोला, चुपचाप विद्याको अपने साथ ले आया था। और आज विद्याके

मुंहसे दूसरी ही बात सुनकर वह पशो पेशमें पड़ गया । उसने भाभीकी प्रथम दिनकी दिव्य मूर्तिको देखकर जो ख्याल किया था कि भाभी एक आदर्श स्त्री है, उसमें क्षुद्रता न होगी और उसका हृदय विशाल होगा । आज उसे कुछ विश्वास-सा होने लगा ।

विद्याके गरम माथेपर हाथ फेरते हुए रामू बोला—‘असलमें घरवाले रुपये-पैसेकी ज्यादा इज्जत समझते हैं, उनको जरूरत भी हैं !’

विद्या बोली—‘रुपये-पैसेकी इज्जत कहां नहीं है ? किसे जरूरत नहीं ? तुम घरपर कुछ रुपया भेजते रहते तो हमारी कितनी इज्जत होती, जानते हो ? पर आज जाकर देखो, कोई पूछेगा भी नहीं !’

रामू बोला—‘क्या भाभी न पूछेंगी, और भैया ?’

विद्याने कहा—‘भैयाको क्या कहते हो, वह तो देवता हैं । वह अपने भाईका निरादर क्या कभी कर सकते हैं ? पर भाभीके सामने क्या मुंह लेकर जाओगे ? जो एक दिन तुम्हारी इज्जत करती थीं और मेरे पास तुम्हारी तारीफोंके पुल बांधा करती थीं, आज वे थूकेंगी भी नहीं !’

विद्याकी बात रामूके हृदयपर चुभ-सी गई । वह सोचने लगा, बोला—‘तुम ठीक कहती हो विद्या !’

‘तो रुपया भेजोगे घरपर ?’

‘हां, आगेसे जरूर भेजूंगा । मगर पहले तुम तो ठीक हो जाओ ।’

‘मेरी चिन्ता तुम न करो, मैं ठीक हो जाऊंगी । जिस दिन मैं सुनूंगी कि घरपर तुम्हारी इज्जत होती है, मेरी बीमारी अपने-आप ही ठीक हो जायेगी । स्त्रियां क्या चाहती हैं—अपने पतिका सम्मान, नाम और यश । दुनियांमें उनका चाहे सब आदर करें, सभी उनका गुण-

सौगात

गान करे, पर उनकी अगर अपने घरपर इज्जत नहीं, तो कुछ भी नहीं । और फिर अपनी सहेलियोंके सामने पतिकी कमजोरीसे सिर नीचा करना स्त्रियोंने नहीं सीखा । मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती, दीदी मेरी जिठानी ही नहीं, मेरी सहेली भी हैं ; तुम्हारी वजहसे वह मेरा भी सम्मान करेंगी । उन्हें सम्मान करना आता है । उनके हृदयमें दया है, प्रेम और महानताकी भावना है, तुम ऐसा करो, जिससे मेरी सहेलीके सामने मेरा सिर ऊंचा रहे ।’

रामूने प्रतिज्ञा की, अबसे वह जो कमायेगा, उसका आधा हिस्सा घरपर भेजेगा—अपनी स्त्रीकी सम्मानरक्षाके लिए, अपनी भाभीके सामने सिर ऊंचा रखनेके लिए । मगर मनुष्य जो चाहता है, वह नहीं होता । होता वही है, जो होना होता है । रामूकी कमाईका अधिकांश भाग विद्याकी बीमारीमें सर्फ होने लगा और एक दिन आया, जब रामू जी-तोड़ परिश्रम करनेपर भी अपनी स्त्रीको नहीं बचा सका ।

उसकी स्त्री मर गई और मरते वक्त कहती गई—‘अच्छा होगा, तुम बच्चेको दीदीके पास सौंप देना । वह बच्चेको देखते ही सब कुछ भूल जायेंगी । उनका हृदय तुम्हें और मुझे अपने-आप ही क्षमा कर देगा । मेरा बच्चा है, वह उसे अपना समझेंगी—मेरी सहेली हैं न दीदी ।’ •

घरकी शून्यतामें रामूका हृदय कराह उठा । बच्चेकी मूर्ति उसके हृदयमें तहलका मचा उठी । उसे विश्वास न हुआ कि भाभी उस बच्चेको अपना सकेगी और उसके मनमें यह पक्का निश्चय हो गया कि जब तक स्त्री जिन्दा थी, भाभीको पृछा तक नहीं और अब भाभीसे बच्चेको बचानेकी भिक्षा मांगना, कायरता है । वह भिक्षा देंगी भी नहीं

व्यर्थमें बात खोना ठीक नहीं। जो होगा, देखा जायगा। और वह कभी खाकर कभी न खाकर बच्चेको जीवनका जंजाल समझता हुआ जीवन बिताते लगा।

और उसका जीवन इसी तरह बीत जाता। उजड़े हुए खंडहरकी तरह उसे एक नजर लोग देख लिया करते। किन्तु भाभीने आकर एक दिन एकायक उसकी जीवन-धाराको बदल दिया। भाभीने कहा—‘रामू बाबू ! तुम्हें शर्म नहीं आती। मेरी आती तो तुमने नष्ट कर दी और अब कहते हो, इस बच्चेको भी इसी तरह कुचल डालोगे ? विद्या मेरी थी, मैंने तुम्हें दी थी कि तुम उसकी रक्षा कर सकोगे, पर तुम नाकामयाब निकले। अब उसकी यादगार तो मेरे पास रहने दो !’

रामूने हंसते हुए कहा—‘भाभी, आप क्या कहती हैं—आपकी आती मैंने नष्ट की ? मैं कहता हूँ, उसीने मुझे नष्ट करके छोड़ दिया। आपने मेरे गले एक जंजाल बांध दिया था।

गुस्सेसे भाभीने कहा—‘शर्म करो, उसने तुम्हें नष्ट किया ? रामू बाबू, मेरी विद्याको ऐसा न कहो, वह इस समय हमारे बीच नहीं। तुम्हें मैंने लक्ष्मी सौंपी थी, मगर तुमने उसे पैरोंसे रौंद डाला। मैंने तुम्हें देवता समझकर उसे सौंपा था।’

रामूने कहा—‘तो क्या आप कहना चाहती हैं कि मैं राक्षस हूँ ? रहने दीजिए अपनी सहानुभूति। यह सहानुभूति दिखानी होती, तो उस समय दिखातीं, जिस समय आपकी लक्ष्मी बीमार थी और आपने एक घूंट पानी तकके लिए उसे नहीं पूछा। आज बच्चेको बचानेकी बड़ी चिन्ता पड़ी है आपको !’

‘रामू बाबू ! मैं सहानुभूति दिखाने नहीं आई और न मैं इसीकी सफाई देने आई हूँ कि जैसे उस बीमारीमें पूछा या नहीं—मैं अपनी चीज लेने आई हूँ और उसे लेकर रहूंगी। बच्चा मेरा है, मेरी विद्याका है। मैं उसे तुम्हारे जैसेके पास नहीं छोड़ सकती।’

सौगात

‘बच्चा मेरा है, मैं उसे आपके पास नहीं दे सकता ।’ उत्तेजित स्वरमें रामू बोला ।

उसी प्रकार उत्तेजित होकर भाभीने कहा — ‘नहीं, बच्चा मेरा है । मैं उसे तुम्हारे पास नहीं छोड़ूंगी !’

‘आप नहीं ले जा सकतीं !’

‘मैं जरूर ले जाऊंगी !’

किन्तु रामूने स्पष्ट देखा, भाभीका गला भर आया है, आंखोंसे अश्रु-धारा बह निकली और भरे गलेसे भाभीने कहा — ‘मेरा क्या लगता है ? क्यों मैं ज़िद करूं ? मैं क्या जानती थी कि मेरी ही विद्या मेरे लिए सांप बन जायेगी— झूठी-सच्ची कहकर मुझे ही घरका दुश्मन बना देगी ! खैर, मेरा माग्य !’

सुनकर रामूका दिल हिल गया । वह सोच न सका कि क्या करूं और क्या न करूं ? विद्याकी अन्तिम बात उस याद हो आई । भाभीके पैरोंपर गिरकर वह बोला— ‘क्षमा कर देना भाभी, विद्याने आपके बारेमें कुछ नहीं कहा । आप अपना सन्देह दूर कीजिए ।’

‘मेरे मनमें सन्देह ही नहीं, दूर क्या करूं ? विद्या मेरी थी, वह सदा मेरी रहेगी । वह मेरे खिलाफ कुछ भी नहीं बोल सकती ।’

‘मुझे क्षमा कर दो न भाभी—कर दोगी ?’

‘किस बातकी क्षमा रामू बाबू ! जानते हो, विद्या तुम्हें देवता समझती थी । मगर किसके कहनेसे ? मेरे कहनेसे । मैं फिर अपने देवताको क्या क्षमा करूं ? मगर मैं चाहती हूँ, तुम मेरे प्रति अंधकारमें न रहो !’

‘भाभी ! विद्याने आपके लिए जो कहा, उससे मैं आपको जानती हो क्या समझता हूँ— मां !’ और पुनः रामूने भाभीके पैर छुए !

भाभीकी गोदमें बच्चा बैठा कहता था— ‘मां ! आंसू क्यों आ रहे हैं ?’
अक्टूबर १९४०

एक तिल

आखिर इतनी उपेक्षा क्यों ? इतना अपमान ! इतनी अन्यमनस्कता ! मनुष्यता भी कोई चीज है—उसमें साधारण शिष्टाचार-सभ्यता भी कोई मानी रखती है ! आज आई तो आई, अब न आऊंगी !—कभी नहीं आऊंगी ! अपनेको न जाने क्या समझते हैं—शराफतके नाते दो बातें भी नहीं करते । मैं कबकी खड़ी हूँ और मेरी तरफ भूलके भी नहीं देखा—अच्छा तो ऐसे ही सही—लो !

आधी रात, सम्पूर्ण नगरी निस्तब्ध, नीरव ! घरके सभी लोग गम्भीर निद्रा-मग्न ! किन्तु शान्ताका हृदय जैसे तूफानका अखाड़ा बना हुआ था, घनघोर घटा, बिजलीकी कौंध आंखोंको चौंधिया रही थी, बादलोंकी घोर गर्जनासे कानोंके पर्दे फटे जा रहे थे, उन्मत्त हवाके विद्रोही झोंके जैसे शहरके शहरको उड़ा ले जाना चाहते थे, एकायक दरवाजोंकी खड़-खड़ाहट सारे मकानको विवृत करने लगी ! शान्ताके हृदयका तूफान जैसे उसकी आंखोंके सामने अदृष्टास करने लगा ; किन्तु शान्ताकी आंखें खुली न थीं, मुंदी थीं—गम्भीर निद्रामें मग्न, ~~न~~ देख रही थी ; इतने

सौगात

भीषण तूफानकी गड़गड़ाहट भी चित्रकारकी निद्रा भंग नहीं कर पा रही है, हवाके कठोर भोके चित्रकारके कमरेके दरवाजेको बार-बार टकरा रहे हैं, फिर भी वह सोया है। वह ऐसा ही है, उसे किसीकी चिन्ता नहीं। तूफान, आग या बज्र गिरे, उसे उठनेकी जरूरत नहीं, दरवाजे तक बन्द करनेकी आवश्यकता नहीं। जो आयेगा, निराश लौट जायेगा। मैं भी तो निराश लौटी हूँ उसके दरवाजेसे? कैसा विचित्र है यह चित्रकार! इस भयंकर तूफानकी कड़कड़ाहटको सोपे ही सोये निहार रहा है! पागल है! और जोरसे चित्रशालाका दरवाजा बन्द कर आई शान्ता। खट् की आवाज हुई और वह चौंककर जाग पड़ी। स्वयं उसीके कमरेका दरवाजा हवाके एक तेज भोकेसे जोरकी आवाज करके खुल गया।

शान्ता हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसके हृदयमें सोती-नींदमें उठा हुआ तूफान अब भी मौजूद था; वह डरी-सी और सहमी हुई थी। किन्तु बाहर!—तूफानके बदले निस्तब्ध रात्रिकी नीरव छाया थी—विचित्र अनुभूति थी। और शान्ता चारपाईपर लेटी न रह सकी। उठकर बिजली जलाई और कमरेसे निकलकर बैल्कनीमें आकर खड़ी हो गई, कुछ सोचती हुई—मैं क्यों उसके लिए इतना सोचूँ? कौन है वह मेरा? उसे तो दीन-दुनियाकी भी सुध नहीं है, न वह बोलता है न चालता, सम्बन्धताके नामपर भी तो वह जिस घरमें रहता है उनसे मेल-मिलाप नहीं करता! तो क्या इन्हींको कलाकार कहते हैं—और सोचते-सोचते उसने चित्रकारके कमरेकी तरफ नजर उठाई, जो पश्चिमकी ओर था;—लेकिन यह क्या, बिजली जली हुई है! तो क्या वह अभी तक जगे हुए हैं, इतनी रात गये भी सोये नहीं? विचित्र आदमी हैं—

विद्वित ! परन्तु यह भी तो हो सकता है कि सोते समय बिजली बुझाना ही भूल गये हों—किसी चित्रकी कल्पना करते-करते भ्रमकी आ गई हो और बिजली जलतीकी जलती रह गई हो ; लेकिन इस लापरवाहीकी भी कोई हद है ! कितना बिल आता है, इसकी उन्हें क्या चिन्ता ? और पिताजी भी कुछ अजब सनकी हैं । आखिर क्या सोचकर इन्हें अपने घरमें रखा है ! और अगर इनकी कलाके भक्त हैं, तो उसे तो पैसा देकर बाजारसे भी खरीद सकते थे । पर पिताजीकी इस भलमनसाहतका उन्हें कोई भी, तिनके-भर भी, ख्याल नहीं है ।...लेकिन कैसा सुन्दर... कितना शान्त !...कितना भोला-भाला !'

और इसी विचार-धारामें शान्ताके लिये वह जाना कोई नई बात नहीं थी । प्रतिदिन ही वह चित्रकारमें खोई सी रहती थी—मान-अपमान, वह भी मन-ही-मन, कभी चढ़ती, कभी उतरती—वह उसके समझनेके ही प्रयत्नमें रहती, उसको सुलभानेमें ही उसका दिन बीतता, तो क्या चित्रकार कोई पहेली था ?

हां, आलोक औसत आदमियोंके लिये पहेली ही था, वह साधारण स्तरसे ऊंचा जो उठा हुआ था । चित्रकारी उसका पेशा था, वही उसकी रोटी थी । नहीं-नही, वही उसका जीवन था, आत्मा थी । सौन्दर्य-भावनाओं और स्वर्गीय कल्पनाओंका संसार ही उसका यथार्थ संसार बन चुका था ।

बाबू करुणार्शंकर बचपनसे ही चित्रकलाके प्रेमी रहे थे । स्वयं तो उत्कट लालसा रहते हुए भी चित्रकार न बन सके थे । परिस्थितियां कुछका कुछ बना ही देती हैं ।

सौगात

लेकिन वह कला-प्रेम उनका अब भी जीवित था। आलोकके चित्रोंको उन्होंने स्वयं देखा था, और देखकर मुग्ध हो गये थे ! उन्हें अपने जीवनमें जैसे साकार, जीती जागती मूर्ति मिल गई हो। कलाकार सहृदय होते ही हैं। दोनोंमें मेल-जोल बढ़ते देर न लगी। और एक दिन बाबू साहबने कहा कि अब मेरे ही पास क्यों न रहो। आलोक को कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती थी, आपत्ति तो उसे अपनी कला-साधनामें तनिक भी विघ्न पड़नेसे ही होती थी और एक दिन आलोकने अपनी चित्रशाला, करुणाशंकरके बड़े बंगलेके एक कमरेमें बना ली— और अपना घर किसीके दिलमें।

और शान्ता ? — वह बाबू करुणाशंकरकी पढ़ी-लिखी सुन्दरी बेटी थी। यौवनके प्रथम हल्के झुकोरेने अभी उसे स्पर्श ही किया था कि उसके जीवनमें एक सुप्रसिद्ध युवक कलाकार अनायास ही आ गया था।

शान्ताके कमरेके समीप रहता हुआ भी आलोक दूर—बहुत दूर लगता था। कलाकार था वह ; इसीलिये भावुकता तो उसका स्वाभाविक गुण होना ही चाहिये, ऐसा ही शान्ताका निश्चित मत था ! तभी तो वह सोचती थी कि ऐसे सुन्दर भावुक व्यक्तिको अपना सुख-दुःख कहनेके लिये एक साथी की भी तो जरूरत होती है ; मगर यह आलोक तो बिलकुल अन्धकार है। न जाने क्या है इसके मनमें ?—मस्तिष्कमें ! गुमसुम ! तो क्या वह अपनेमें ही सम्पूर्ण है, तूलिकामें ही समस्त जीवन का आनन्द पा लेता है ? या इसका हृदय किसी वेदनाघातसे टूटा हुआ है ? जो अब बोलता नहीं ? जो भी हो, चुप तो अच्छी नहीं !

चुपके तो कुछ भी अर्थ हो सकते हैं ! इससे तो सन्देह ही पैदा होता है ।

और इस प्रकार सोचते-सोचते वह खीझ उठती ! खिसिया जाती । खीझी और खिसियाई-सी वह रहने लगी थी । फिर भी उसने हार नहीं मान ली थी । आज भी विजय लालसा लिये वह पागल फिरती थी । उसी आकांक्षाके बवण्डरने उसके हृदयमें भी तूफान पैदा किया था जो इस अर्द्ध-रात्रिमें भी ढकेले लाकर आलोकके दरवाजे पर उसे खड़ा कर गया था ।

लेकिन दरवाजा बन्द था, बन्द रहा !

उसे वह खुलवाती भी तो कैसे ?

दरवाजा बन्द था ही, खुलवाने ही पर तो वह खुलता । इसमें अपमानकी तो कोई बात नहीं थी, लेकिन शान्ताको बन्द दरवाजा अपमानका पत्थर मालूम हुआ, जिससे टकरा कर वह मोट खाकर लौट पड़ी ।

आशाके पंख लगाकर वह उड़ी थी, किन्तु तूफानका थपेड़ा खाकर वह गिर पड़ी ।

कमरेमें सूरजकी पहली किरणने झाँककर देखा कि शान्ताके कमरेमें अशान्ति थी । वह आंसुओंसे भीगी हुई थी । सूरज निकलनेका आभास पाकर वह चैतन्य हो गई । वह उठ बैठी । रात सामने धूम गई । अपने पर मुँहलाहट आई । आखिर इतनी दुर्बलता क्यों ? मैं क्यों रोज़, मेरा कौन है वह जिसके लिये आंसू बहाऊँ ? पिताजी कहीं आ जायें तो क्या कहेंगे ?

सौगात

आंचलसे सिर ढांका और चारपाईसे नीचे पैर रखा । एक अंगड़ाई ली, और जैसे स्वस्थ होकर वह खड़ी हो गई ! लाइफ-साइज शीशेकी तरफ घूमी और 'पगली' कहकर चल दी ।

चल तो दी, पर रास्तेमें आलोकका कमरा पड़ता था, वहां पहुँचते-पहुँचते उसके पैर फिर ठिठकने लगे ।

दरवाजा थोड़ा-सा खुला था ।

शान्ताने योंही अनमने मनसे भांका ।

एक बड़े चित्रके सामने तूलिका लिये आलोक खड़ा था । बाईं ओर पूर्वसे आते हुए सुनहले प्रकाशमें वह स्वर्ण-सा जगमगा रहा था, जैसे कोई स्वर्गका देवता हो !

शान्ता रुक न सकी । दबे पांव भीतर जाकर ठीक आलोकके पीछे खड़ी हो गई ।

शान्ताके आश्चर्यका ठिकाना न रहा ।

वह अपने सामने अपनेको ही खड़ा देख रही थी !

रात्रिके अन्धकारको प्रभातके आलोकने दूर कर दिया था ।

शान्ताके ऊषा-रंजित फपोलोंपर आश्चर्ययुक्त आनन्द और अभिमानकी स्मित रेखा खिल उठी !

और शान्ताकी उपस्थितिसे अनजान ही आलोक उस चित्रको एक अनिर्वचनीय विस्मयानन्दमें देख रहा था, जैसे उसके जीवनकी साधना ही आज पूरी हो गई हो । उसकी कला मूर्त हो गई हो । धीरे-धीरे चित्रकारने अपने होंठ चित्रके रक्तिम अधरोंकी ओर बढ़ाये ।

शान्ता खड़ी न रह सकी, उसके मस्तिष्ककी शून्यता फिर भरने लगी

नारी-मुलभ स्वाभाविकतायें उसपर अधिकार करने लगीं । वह शरमाई-सकुचाई और दो पैर पीछे हट गई । उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था । फूल-गत्तियोंपर सुबहकी ओसकी तरह उसके सारे बदनपर स्वेदकी बूंदें झलकने लगीं ।

आत्म-विस्मृतिसे जागकर जैसे शान्ताने देखा आलोक स्थिर-चित्त हो, एकटक चित्रपर नजर गड़ाये हुए है ।

वह तूलिकाको उलटकर होठोंपर रखे ध्वनिमें सोच रहा है—‘यहां एक तिल भी होता, तो सोनेमें सुगन्ध.....’

और तूलिकाको वह दो-तीन बार बायें कपोलपर ले गया ; लेकिन फिर रुक गया । अगर उसके तिल वास्तवमें न हुआ, तो—तो क्या भूठ हो जायेगा यह चित्र ?..... नहीं नहीं, कल्पनाका सत्य ही वास्तविक सत्य है, यथार्थ न भी हो चाहे । और फिर वह विश्वका महानतम कलाकार ऐसी भूल नहीं कर सकता—और आलोककी तूलिका एक पलके लिए पुनः गतिशील हुई ।

उल्लाससे उछलकर आलोकने सन्तोषकी सांस ली, सोचा—‘काश ! शान्ता इस समय यहांपर होती.....’

और आशा-भरे नेत्र उसने कमरेके चारों ओर घुमाये ।

शान्ता खड़ी थी, चुप ! लाजसे भरी हुई ।

आलोकने देखा ; जैसे प्रथम मिलन-रात्रिमें आई नव-वध खडी हो । सौन्दर्य स्नात सद्यः !

आलोकने शान्ताके बायें कपोलपर देखा ही था कि वह गद्गद्

सौगात

कण्ठसे बोल उठा—‘वह कभी गलती नहीं कर सकता,—भगवान !
आज मेरी साधना सफल हुई ।’

कोशिश करनेपर भी आलोक शान्ताके चेहरेसे अपनी दृष्टि नहीं
हटा सका ।

शान्ताने बड़ी-बड़ी पलकें नीचे ही किये कहा—‘और आलोक !
आज मेरी भी साधना.....; लेकिन क्या हमारे बीच केवल एक
तिलका ही व्यवधान था ?’

‘अब तो वह भी नहीं रहा शान्ता !’—आलोक एक बार चित्रको
देख रहा था, एक बार शान्ताको और वह एक तिल उसे दोनोंमें
दिखाई दे रहा था !

जुलाई १९४०

अन्ध-विश्वास

कलकत्तेमें दो किस्म के आदमी रह सकते हैं, एक तो वे, जो धनी हैं या फिर जो रास्तोंमें भीख मागते हैं। मदेश जैसे आदमीका वहां गुजारा नहीं, सुबहसे शाम तक खटना और महीनेमें पचास रुपक्ती लेकर घर लौटना—मदेश जैसे ग्रेजुएटोंका अपमान नहीं तो यह और क्या है ? यूनिवर्सिटीकी डिग्रीको सन्दूकमें रखकर बेकार रहना ही उसने पसन्द किया, घरको उसने लिख दिया कि नौकरी-चाकरी कुछ है नहीं, शादीकी अभी जरूरत क्या है ? वह पन्द्रह रुपयेका ट्यूशन करता और कलकत्तेके एक मेसमें रहता ।

मेसवालोंके लिये वह एक रहस्य था । कोई सोचता, गुम गुम कमरेमें बन्द रहकर कोई वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा है ; कोई समझता, बेकारीका मारा है ; किसीका ख्याल था, बड़ा खतरनाक आदमी है और कोई कहा करता, बेचारा सीधा जीव है ।

सौगात

कालीचरण बाबू मदेशके पितासे कई महीनोंसे पत्र-व्यवहार कर रहे थे कि मदेशके लिये वे अपनी कन्या कृष्णाको दें और मदेशके पिताकी आज्ञा पाकर एक दिन वह उस मेसमें आये ही थे कि उन्हें सीढ़ीके पास ही एक मोटे-से आदमीसे पूछना पड़ा—‘क्या मदेश बाबू नामसे कोई इस मेसमें रहते हैं?’ प्रश्नका पूछना था कि मोटे महाशय जैसे एकायक बरस पड़े—‘और क्या नहीं रहते, महाराजको खिलाओ-पिलाओ, रहनेको जगह दो और पैसकी बात ही नदारद, ऐसे भला कब तक चल सकता है? होगा कहीं ऊपर पड़ा हुआ, देख लीजिये।’

कालीचरणजी चकराये, पूछा—‘क्यों, क्या बात है?’

जवाब मिला—‘बात और क्या होगी, अरे महाराज ! एक तो खाते हैं, दूसरे ऊपरसे रोच छाटते हैं। आज पूरे तीन महीने हो गये, एक पैसा नहीं मिला—आप क्या उनसे मिलना चाहते हैं, कहिये क्या काम है, क्या कहीं नौकरीका मसला है? अरे दीजिये बेचारेको कहीं नौकरी-चाकरी, पेट भरके खाना तो खा ले। अजी आज जनाबसे पैसा मांगने गये तो कहते हैं—‘रखना हो तो रखो, नहीं तो कह दो चले जायं, इस तरह रोज-रोजकी बातें बर्दाश्त नहीं होती।’ भला आप ही बताइये, अपना पैसा मांगना भी क्या बातें हैं?’

कालीचरणने कहा—‘तो आप कह क्यों नहीं देते कि चले जाओ, जगह खाली करो?’

वह बोला—‘वाह साहब ! आप भी खूब मजाक करते हैं। कह दूं कि चले जाओ ! कहां चला जाय ? इस मेसको छोड़कर उसका और है कौन इस कलकत्तेमें ? भूखा न मरेगा, रहेगा कहां ? उसमें

मांगनेकी तो भी अक्ल नहीं। अगर कुछ अक्ल ही होती, तो आज बी० ए० पास किया था, क्या नहीं था उसमें, दो सौ रुपये महीनेकी सर्विस करता कहीं जाकर, यदां हमारे लिये बवाल न बना रहता।'।

कालीचरण जीने कहा—'फितने दिनसे रहते हैं आपके यहां?'

वह बोला—'रहनेको तो आज पूरे तीन वर्ष हो गये, मगर ऐसा रहना भी क्या रहना, काम-धाम तो कुछ करता नहीं, कहींसे पन्द्रह रुपये लाता है और सबके सब मेरे हाथमें रख देता है, अपने लिये कुछ भी नहीं रखता। ऐसे आदमियोंको भला निकाला जाता है? ऐसे आदमियों को तो घरमें बाहर निकलना ही नहीं चाहिये, राम जाने क्या हो गया, आज पूरे तीन महीने हो गये एक पैसा भी नहीं दिया, एक पैसा।'।

उन्ोंने कहा—'तो उनपर आपका पैतालीस रुपया ही तो बाकी है न? लीजिये, मैं दे देता हूँ।'।

वह बोला—'आप आप क्या उनके बड़े भाई हैं? हां-हां, इसी-लिये वे अभी तक पूछते थे कि मुझे पूछनेके लिये कोई आया कि नहीं, आइये-आइये, चलिये बैठिये।'।

गद्दीपर बैठते हुए कालीचरण जीने कहा—'मैं उनका बड़ा भाई नहीं हूँ, वे मेरे दोस्तके लड़के हैं, मैं आपसे कुछ पूछने आया था—'महेश लड़का है कैसा?'

'कैसा और क्या होगा, हमारे मेसमें सबसे अच्छा, सबसे खूबसूरत।'।

'नहीं-नहीं, मेरा मतलब है उसका स्वभाव-चरित्र कैसा है?'

'स्वभाव तो ऐसा है कि बस कुछ न पूछिये। और चरित्रके बारेमें तो कहना ही क्या है, घरमें बाहर कभी निकलता ही नहीं।'।

सौगत

‘घरसे बाहर निकलनेसे क्या चरित्र अच्छा नहीं रहता ?’

‘अरे महाराज ! हमारे इसी मेसमें ऐसे-ऐसे देवता हैं कि जो सात-सात दिन तक लापता रहते हैं । मदेशमें यह सब नहीं है । सिगरेट, पान, चाय, किसी भी चीजको वह छूता तक नहीं ।

‘अच्छा तो मैं जरा उनसे मिलकर आ जाता हूँ ।’ कहकर वे ऊपर चले गये । ऊपर जाकर उन्होंने देखा—मदेश किसी किताबमें कीड़ेकी तरह चिपका हुआ है, किसीके आनेका उसे पता नहीं । उसे हिलते-डुलते न देख उन्होंने कहा—‘क्या मदेश बाबू आपका ही नाम है ?’

‘हां-हां, बोलिये ।’ मदेश जैसे चौंक उठा ।

‘मैं आपसे मिलने आया हूँ ।’ कहकर कालीचरण कुर्सीपर बैठ गये ।

‘इसी वक्त ?’ मदेशने कहा ।

‘हां, क्यों, आप क्या किसी काममें लगे हैं ?’

‘नहीं, काम तो कुछ नहीं—बोलिये ।’

‘मैं रामगढ़से आया हूँ, चौधरी कालीचरण मेरा नाम है, नारायण बाबू मेरे मित्र हैं, तुम तब छोटे-से थे, नारायण बाबू और मैं उस जमानेमें एक साथ काम करते थे, जमाना गुजर गया, आज तुम इतने बड़े हो गये हो, घरसे नारायण बाबूने कुछ लिखा है, कोई चिट्ठी तो आयी होगी ?’

‘हां-हां, आयी तो थी, पिताजीने सब कुछ लिख दिया था, मगर बात यह है कि मैं इस समय बिल्कुल ही बेकार हूँ, अभी तो शादीका कोई इरादा नहीं, आप फिर कभी आते, तो अच्छा था ।’

‘बेटा महेश ! शादी-ब्याहका मामला ‘फिर कभी आते या आज नहीं कल’ कहकर तो नहीं चलता । शादी तो होगी ही, तुम्हें तो नहीं मालूम, तुम्हारे पितासे मेरी इस बारेमें बहुत पुरानी बातचीत है, तुम सयाने हुए हो, कृष्णा भी सयानी होगई है, तुम्हारा-हमारा कोई लेने-देने का भगड़ा तो है नहीं, नौकरी भी मिल ही जायेगी और फिर नौकरीका तुम्हें करना ही क्या, इधर भी तुम्हारा, उधर भी तुम्हारा । दो प्राणी तुम हो, खाओ-पीओ और सुखसे रहो, बस हां कह दो ।’

‘आप ठीक कहते हैं, मगर शादी-ब्याहके मामलेमें जरा सोच-समझ कर काम लेना ही अच्छा होता है, जरा अपने पैरोंपर खड़े होने दीजिये, फिर देखा जायेगा । अभी जल्दी क्या है ?’

‘अपने पैरपर क्या तुम अभी नहीं हो, अब कौनसे तुम पराये बस हो, फिर भी जल्दीकी कोई बात नहीं थी, मगर कृष्णाकी चिन्ता है, वह बड़ी हो गई है, उसे तुम्हारे हाथमें सौंप जाता तो अच्छा था, बड़ी लड़की रमा थी, उसे मैं उसके योग्य स्थानपर दे चुका हूँ, भगवानकी दयासे वह आज एक बच्चेकी मां बन गयी है, अब बेटा ! इसमें नूना करनेकी जरूरत नहीं, तुम दोनोंको एक करके मैं निश्चिन्त हो जाना चाहता हूँ ।’

‘बाबूजीने सब कुछ तो लिख ही दिया था, आपको इतना कहनेकी कुछ जरूरत ही नहीं थी, मगर फिलहाल शादीकी ऐसी जरूरत नहीं देख रहा हूँ और भी कई बातें हैं, अभी तो कुछ कह नहीं सकता ।’

काली बाबू हारे नहीं, मगर उनके दिमागमें एक और ही बात काम करने लगी—लड़का अच्छा है, भद्र है, कुलीन है, शिक्षित है और

सौगात

सुन्दर भी है। अपनी कृष्णाके लिये उससे अच्छा वर उन्हें भला कहाँ मिल सकता था, क्षणभरकी बचपनकी बातोंसे नाराज होकर चले जाना उन्होंने अच्छा न समझा, उन्होंने सोचा—आज नहीं तो कल और नहीं तो दूसरे दिन जरूर रास्तेपर आयेगा ही, इसलिये कृष्णासे हिला-मिला देना अच्छा होगा, इस मिलापसे भी उसके मतमें परिवर्तन हो सकता है और इसीलिये उन्होंने कहा—‘अच्छा तो कोई बात नहीं, कुछ दिन तुम भी सोच लो, मगर कभी-कभी उधर आया तो करो, इतने नजदीक रहकर भी तुम तो कभी मिलते नहीं। बेटा, हम लोगोंका आजका नहीं, बहुत पुराना सम्बन्ध है ; उधर आया करो—बोलो कब आओगे कल या परसों रविवारको ?’

बिना सोचे-समझे ही मदेशके मुँहसे निकल पड़ा—‘रविवार ही ठीक है।’

‘अच्छा, तो रविवारको मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगा। देखना, कहीं भूल न जाना, आओगे तो ? खाना वहीं खाना होगा मगर !’

‘अब खाने वानेका भगड़ा.....’

‘नहीं-नहीं, खानेके लिए वहीं आना होगा। बस, अब मैं जाता हूँ।’ कहकर कालीचरणजी चले गये।

[२]

ठीक समयपर मदेश रविवारके दिन रामगढ़ कालीचरणजीके यहां पहुँचा। वे तो देखते ही ऐसे प्रफुल्ल हुए, जैसे स्वर्गसे कोई दूत आया हो। ‘आओ आओ मदेश बेटा, आओ—अरे कृष्णा ! मदेश आया है।’ कहते-कहते वे स्वयं बाहर निकले और दूसरे कमरेमें

बैठी कृष्णाको वहां ले आये। महेशको इतना स्वागत कुछ ज्यादा ही लगा, मगर इसपर विचार करनेका उसके पास समय नहीं था। कृष्णा वहां आ पहुँची थी, दोनोंने एक दूसरेको नमस्ते किया; दोनों ही एक दूसरेमें समा गये, दोनोंके मुँहपर लाली छा गई। काली बाबूने कहा—‘जाओ बेटी, पहले चायका इन्तजाम करो, खाना पीछे होगा।’

कृष्णा चायका इन्तजाम करने चली गई। चमकता हुआ चेहरा न होनेपर भी कृष्णामें वह सौन्दर्य अवश्य था, जिसपर महेश जैसा व्यक्ति मुग्ध हो सकता था। सरल, सुगठित शरीर, भोला चेहरा, बड़ी-बड़ी काली आंखें, सादा पहनावा और बोलीमें चतुरता—महेशका मन भर जानेपर भी आंखें जैसे प्यासी ही रहें। वह पूरी तरह देख भी न पाया था कि तब तक कृष्णा चाय बनानेके लिए चल पड़ी।

कुछ देर बाद ही कृष्णा उस कमरेमें आई और चायवाली टेबुल महेशके सामने रखकर पुनः बाहर जा रही थी कि महेशके साथ उसकी आंखें चार होते ही वह दरवाजेसे टक्कर खाते-खाते बची और मुस्कराती हुई चली गई, महेशको भी हंसी आई, किन्तु उसने मुँहपर रुमाल लगा लिया, इसी समय कृष्णा चाय टेबुलपर रख गई और एक क्षण बाद ही तश्तरीमें कुछ लेकर आई।

कालीचरणजी बोले—‘महेश शर्मीला लड़का है बेटी, उसे तो अपने सामने खिलाना, नहीं तो वह खायेगा नहीं। बेटा, जल्दीसे चाय पी लो, फिर भोजन।’

कृष्णा तो मुस्कराकर चुप रह गई, पर महेश काली बाबूकी ओर मुँह फेरकर बोला—‘खानेमें भला मुझे क्या शरम?’

सौगात

कृष्णा बैठी रही, काली बाबू दूसरे कमरेमें जा रहे थे कि महेशने कहा—‘आइये आप ।’

कालीचरणजीने कहा—‘मेरा तो आज रविवारका व्रत है, मैं तो आज जल तक नहीं छूता, तुम पीओ बेटा, मैं अभी आया, तुम निश्चिन्त होकर खाओ-पीओ, अपना घर है ।’ कहकर काली बाबू चले गये ।

कृष्णा पास खड़ी रही, महेश चाय पीने लगा, दोनोंमें कोई कुछ न बोलता था, पर महेशने नीरवता भंग की, बोला—‘चायकी तो इस वक्त कोई आवश्यकता नहीं थी । क्या खाना अभी तैयार नहीं है ?’

कृष्णाने कहा—‘तो हर्ज ही क्या है ?’

महेशने कहा—‘हर्ज तो कुछ नहीं, पर मुझे जरा जल्दी जाना है इसीलिए ।’

कृष्णा बोली—‘क्यों, क्या यहां अच्छा नहीं लग रहा है ? न भी लगे, तो थोड़ा कष्ट ही सहो ।’

महेशने कहा—‘नहीं, कष्टकी कोई बात नहीं, मगर जरा काम था ।’

बात काटकर कृष्णा बोली—‘आज रविवारके दिन भी भला काम नहीं छूटा ? इतना जरूरी काम था, तो आनेकी जरूरत ही क्या थी ?’

‘मगर अब तो आ गया हूँ, अब क्या किया जाय ?’ कहते-कहते वह मुस्कराया भी ।

कृष्णा बोली—‘अब आज तो जा नहीं सकते ।’

महेश चाय समाप्त कर चुका था, कृष्णा बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही व.प प्लेट उठाकर ले गई । थोड़ी देर बाद पिताजीके साथ आई और उनके सामने ही बोली—‘बाबूजी, इनको यहां अच्छा नहीं लग रहा है ।’

चौककर जैसे कालीचरणजीने कहा—‘क्यों, क्या हुआ महेश ?’
कृष्णा दूसरी ओर मुंह करके मुस्करा रही थी ।

‘कुछ नहीं, किसने कहा कि अच्छा नहीं लग रहा है ?’

कृष्णा पिताकी ओर देखकर बोली—‘अभी तो कहते थे कि मैं जल्दी जाना चाहता हूँ ।’

जोरसे हंसकर कालीचरणजीने कहा—‘कृष्णा तुम्हें चिढ़ा रही है, मगर क्यों, तुम जल्दी क्यों जाना चाहते हो ?’

‘कुछ नहीं, योंही । कुछ काम था, इसीलिए कहा ।’ महेशने कहा ।

‘बाबूजी, काम कुछ नहीं, यहांसे जानेका बहाना बना रहे हैं ।’
कृष्णा बोली ।

कालीचरणजीने महेशके कन्धोंपर हाथ रखते हुए कहा—‘आजके दिन तो यहीं रहो, कल चले जाना, एक दिनमें क्या कुछ बिगड़ जायगा ।’

उन्होंने कृष्णाकी ओर देखकर कहा—‘अच्छा तो महेशको खाना खिलाओ बेटी, तब बैठकर बातें करेंगे ।’

महेशने कहा—‘और आप ?’

कृष्णाने कहा—‘उनका तो व्रत है न आज, उन्हें खाना नहीं है, आप चलिये न ।’

महेश चुपचाप कृष्णाके साथ चला गया । इतनी बातें न होतीं, तो महेश अकेले बैठकर, कृष्णाके सामने कैसे खाना खा सकता ? इसलिए कृष्णासे हारकर भी महेश मन ही-मन प्रसन्न हो रहा था ।

आसन बिछाते हुए कृष्णा बोली—‘कैसी हार खानी पड़ी ?’

सौगात

‘अपने घरपर किसीको हरा देना कोई बहादुरी नहीं है ?’ आसनपर बैठते हुए महेशने कहा ।

कुछ गम्भीर होकर कृष्णा बोली—‘क्षमा कीजियेगा, मुझे नहीं मालूम था कि यह मेरा ही घर है, नहीं तो हरानेकी कोशिश नहीं करती ।’

सुनते ही महेशको यह समझनेमें देरी नहीं लगी कि कृष्णा नाराज हो गई है, वह लज्जित हो गया, बोला—‘आप नाराज हो गईं ?’

कृष्णाने जवाब दिया—‘अपने घरपर मैं चाहे नाराज होऊँ, चाहे जो करूँ, किसीका तो कुछ नहीं बिगड़ता ! मेरा ही घर जो हुआ ?’ और कृष्णाका मुँह भारी हो गया ।

महेशने कहा—‘कृष्णा, तुम सचमुच नाराज हो गईं ?’

‘तुम’ शब्दके सुनते ही कृष्णाके मनकी सारी विपरीत भावनायें अपने आप ही नष्ट हो गईं । उसने कहा—‘आप ही तो ऐसी बातें करते हैं ।’

‘तो अब माफ़ कर दिया न मुझे ? मैं अब खाना खाऊँ ?’

कृष्णाने चुपचाप मुस्कराकर उत्तर दिया और उसके मुस्कराते ही महेशने खाना आरम्भ कर दिया । कृष्णा बैठी हुई थी । महेश बीच-बीचमें आँख उठाकर उसे देख लेता था । एक बार जब कृष्णा खाना लाने गई हुई थी, महेशने सोचा—‘कृष्णा-जैसी लड़कीसे विवाहके लिए इनकार करना वास्तवमें बेवकूफी है ।’ इतनी मुश्किल लड़की उसने अपने जीवनमें न देखी थी, उसने मौका हाथमें न जाने दिया और सुविधा पाकर इसी समय और भी कुछ अपने दोनोंके जीवनके बारेमें पूछ लेना अच्छा समझा । कृष्णा कुछ लेकर आ गई थी । उसके

खाना देते-देते महेशने कहा—‘देखो कृष्णा ! जो कुछ खाना था, वह तो खा चुका । अब जबर्दस्ती न करो ।’

‘खाइये अभी, जबर्दस्ती क्या है ?’

‘अभीका मतलब ?’

‘आप नहीं जानते ?’

‘बतलाओ न !’

‘अच्छा, जानेकी ज़िद न कीजिये—जब तक मैं न कहूँ ।’

‘तुम कभी न कहो तो क्या मैं कभी न जाऊँ ?’

‘तो क्या मैं इतना विश्वास नहीं कर सकती ?’

‘कि तुम कहो तो मैं यहीं बना रहूँ ?’

‘हां ।’

महेश सोचने लगा ।

‘अच्छा कृष्णा, एक बात पूछूँ ?’

‘पहले मेरी बातका जवाब दीजिये ।’

‘हां, तुम्हारी बातका जवाब है मेरी बातमें ।’

‘तो पूछो ।’

‘यह तो तुम भी जानती हो कि तुम्हारे पिताजी हम दोनोंकी शादीके लिए व्यस्त हैं, इसीलिए मैं पूछता हूँ कि हम दोनोंकी शादी हो जानी क्या अच्छी है, क्या तुम मेरे साथ सुखी रह सकती हो, जबकि मैं एकदम बेकार हूँ, कहीं नौकरी-चाकरी तो करता नहीं ?’

‘मैं सब जानती हूँ, मैं सब सुन चुकी हूँ—और यह भी कि शादी करनेका इरादा भी नहीं है ।’

सौगात

‘यह तो पुरानी बात है, अब नहीं, मगर तुम पहले मेरी बातका जवाब दो ।’

‘मैं क्या जवाब दूँ, अपने ही मनसे पूछ देखिये न ?’

किञ्चित् हास्यकी छाया कृष्णाके समस्त मुख-मण्डलपर व्याप्त हो गई । वह बोली—‘अच्छा, अब मेरी बातका जवाब दो ।’

‘किस बातका ?’

‘वही विश्वासवाली बातका ?’

‘उसका जवाब तो तुम्हें पहले ही मिल चुका है ।’

महेश उस दिन तो वहीं रहा, दूसरे दिन भी सन्ध्या तक उसे वहीं रहना पड़ा । दूसरे दिन रातको जब वह घर लौटा, तो उसने अनुभव किया कि जीवनकी बहुत बड़ी सार्थकता अब उसमें आ गयी है, उसके हृदयमें एक माधुर्य भर गया है । कृष्णाका ख्याल वह एक क्षणके लिये भी अपने मनसे नहीं भुला सका, कल्पनाओंका समुद्र उसके सामने लहराने लगा ।

(३)

सुबह उठते ही महेश प्रायः रोज ही छतपर चहलकदमी किया करता था और सामने रास्तेके उस पारवाली छतपर खेलते हुए बच्चेको देख लिया करता था । बच्चा उसे बहुत ही प्यारा लगता था, उसका दिल उसे गोदमें उठानेके लिये चाहता था, मगर दूसरेका बच्चा, दूसरी छतपर, कैसे सम्भव था ? वह बच्चेके खेलोंको देखकर बड़ा विनोद अनुभव करता था । किन्तु जब बच्चेकी मां छतपर आती, वह वहांसे दृष्टि हटा लेता । बहुत दिनोंसे यही क्रम जारी था, बिना बोले और बिना परिचयके ही बच्चेकी

मां महेशसे परिचित हो गयी थी, महेश भी उस घरके सभी लोगोंको अच्छी तरह जानता था, यद्यपि कभी भी किसीसे बात करनेका मौका नहीं मिला था ।

उस दिन भी महेश अपनी कल्पनाओंकी तरंगोंमें एकटक बच्चेको देख रहा था कि इसी समय बच्चेके पिताने आकर उसे गोदमें उठा लिया और सीढ़ियोंसे नीचे सड़कपर जाकर उसे जमीनपर उतार दिया और उंगली हाथमें ले वह आगे बढ़ने लगा ।

महेशको मौका मिला, वह जल्दी-जल्दी नीचे उतरा और बच्चेके पीछे-पीछे जाने लगा । बच्चेकी मां अभी तक खिड़कीसे देख ही रही थी, उसने महेशको भी बच्चेके पीछे जाते देखा । एकायक महेशने पीछेसे बच्चेको गोदमें उठा लिया । अकचकाकर बच्चेके पिताने महेशकी ओर देखा । बच्चा इस आकस्मिक व्यवहारसे शायद अत्यन्त भयभीत हो उठा और जोरसे रो पड़ा । महेश लजित हो गया । उसने कहा—‘मैं सामनेकी मेसमें रहता हूँ । बच्चेको रोजही देखा करता हूँ, मगर यह रो क्यों पड़ा ?’

राजूको अपनी गोदमें लेकर उसके पिताने कहा—‘इसी मेसमें ?’

कुछ साहस-सा महेशमें पैदा हुआ । वह बोला—‘जी हां, इसी मेसमें, इस बच्चेको बहुत चाहता हूँ, मगर यह अभी तक रोता क्यों है ?’

उसके पिताने कहा—‘कोई बात नहीं, ठीक हो जायेगा ।’ और वह उसे लेकर आगे बढ़ा, महेश लौट आया, राजूका रोना अभी तक न रुका ।

महेश अपनेको लजित और अपराधी-सा समझ रहा था, मेसमें

सौगात

अपनी सीटपर बैठते ही उसने सामनेके मकानपर नजर दौड़ाई, बच्चेकी मां बड़े गौरसे महेशकी ओर देख रही थी, महेशने किताब निकाली और चुपचाप अपनी सीटपर लेटकर पढ़ना शुरू किया, क्षण-भरमें ही वह सो गया ।

नींद खुलते ही उसने एक बार सामनेके घरकी ओर नजर उठाई, देखकर वह घबरा गया, बहुतसे आदमियोंसे घिरा हुआ डाक्टर किसी रोगीकी परीक्षा कर रहा है । उसका हृदय धक् धक् करने लगा—वहीं राजू तो बीमार नहीं पड़ा ? उसने देखा, राजूके माता-पिता भी वहां खड़े हैं और नहीं है तो एक बच्चा ही नहीं है । इसी वक्त राजूके पिताने पास खड़े आदमीको महेशकी ओर इशारा करके बताया । महेश सिरसे पैर तक कांप उठा । उसने देखा, डाक्टर कुछ व्यक्तियोंको साथ लिए उस कमरेसे बाहर निकला है, महेशको चारपाईपर धचा पड़ा हुआ दिखाई दिया, एक अनिष्टकी आशंकासे उसका हृदय थर्रा उठा, वह कुछ सोच ही रहा था कि राजूके पिताके साथ चार आदमी महेशके कमरेमें आ धमके । गुस्सेसे उनकी आंखें लाल हो रही थीं ।

‘आइये...’ कुछ टूटे-से शब्द महेशके मुंहमें निकले ।

राजूके पिताने कहा—‘बता हरामजादे, क्या किया तूने उस वक्त ?’ और जोरसे कड़ककर उसने कहा—‘बता क्या किया था बच्चेको उठाकर ?’

महेशने कहा—‘क्यों, क्या हुआ ?’

महेशके कमरेवाले अन्य दो आदमियोंने आगे बढ़कर कहा —‘क्यों, क्या हुआ ?’

आनेवाले सभी गुस्सेसे कांप रहे थे, एकने जोरोंकी चपत महेशके

गालपर जड़ते हुए कहा—‘साला पूछता है क्या हुआ ?’ दूसरी ओरसे भी एक चांटा रसीद करते हुए उसने कहा—‘बताऊं क्या हुआ ?’

महेशने अपने आपको बचानेकी कोशिश करते हुए कहा—‘बताओ भी तो क्या हुआ ?’

इसपर सभीने उस अकेले पर अपना जोर आजमाना आरम्भ किया औरतब तक आजमाया, जब तक वह एकदम बेहोश होकर गिर न पड़ा। शोर-गुल हुआ। ऊपर नीचेके बहुत-से आदमी एकत्र हो गये। पूछ-ताछ हुई—क्या हुआ, क्या हुआ ? वे सब एक साथ ही बोल उठे—‘यह साला राक्षस है, इसने बच्चेपर जादू कर दिया। उसका बुरा हाल है। १६ रु० डाक्टरको देकर बुलाना पड़ा।’ महेश को बेहोश देखकर वे सब जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। किसीकी समझमें यह नहीं आया कि आखिर बात क्या है। मेसके मालिकने अपने खर्चसे डाक्टर बुलाया, वह खुद बड़े ही पसोपेशमें पड़ा था कि क्या करें और क्या न करें। मगर जब तक महेश होशमें नहीं आता, तब तक वह कुछ भी सोच न सका।

इधर महेश पड़ा था और उधर बच्चा। दोतीन घण्टेके बाद महेशको जब होश आया, उसने जब आंखें खोलीं, तो उसके पास कोई न था। उसने सामनेके मकानकी ओर देखा बच्चा पड़ा था, सिरहाने मां बैठी थी, दोतीन आदमी राजूके पिताके साथ दूसरे कमरेमें बातें कर रहे थे। महेशने यहीसे चिल्लाकर कहा—‘बच्चा कैसा है ?’

किन्तु उसकी आवाज किसीके कानमें न पड़ी, बड़े कष्टसे महेश अपनी जगहसे उठा और गिरता-पड़ता नीचे उतरा। मेस-मालिकने

सौगात

उसे पकड़ते-पकड़ते पूछा—‘अरे कहां जा रहे हो, क्या बात है ? सुनो भी तो ।’ वह चिल्लाता ही रह गया और मदेश रास्ता पार करके सामनेवाले मकानमें चढ़ गया, लड़खड़ाता हुआ वह राजूवाले कमरेमें घुस गया, आश्चर्यसे सभी उसको देखने लगे ; किन्तु किसीने उसे रोका नहीं । जाते ही कम्पित स्वरसे मदेशने पूछा—‘बच्चा कैसा है ?’ यह कहते-कहते वह गिरने सा लगा । राजूके पिताने उसे सम्भाल लिया, कुर्सीपर बिठाते हुए कहा—‘अच्छा है ।’

मदेश हांफते हुए कहने लगा—‘मैंने नहीं समझा था ।’ और बाकी वह नहीं कह सका कि एकायक खूनकी उल्टी हुई । सहारा देते-देते वह ठण्डा पड़ने लगा, हाथ-पांव अकड़ते जा रहे थे, देखते ही देखते वह वहीं बेहोश हो गया । घरवालोंने उसे दूसरे कमरेमें ले जाकर लिटा दिया । जहां बच्चेकी चिन्ता मिटती जा रही थी, वहां मदेशकी चिन्ता ने उन्हें चञ्चल कर दिया था और मदेशकी सेवामें वे तल्लीन हो गये ।

(४)

‘क्यों दयाल, क्या बात है । क्या हुआ बच्चेको ? अब कैसा है ?’ कहते-कहते कालीचरणजी उस कमरेमें प्रविष्ट हुए, उनके पीछे-पीछे कृष्णा थी । वे बोले—‘मैं तो तार पाते ही चल पड़ा । कैसा है बच्चा ? आज ही क्या हो गया, चार दिन पहले तो मैं देखकर गया था, बिलकुल ठीक था ।’

राजूकी माने कहा—‘सुबह भी तो ठीक था बाबूजी, हंसता हुआ बाजार गया और रोता हुआ घर लौटा । देखा तो १०४ डिग्री बुखार अपने आप तो मरेगा ही, मेरे बच्चेको भी ले जाना चाहता था ।’

‘कौन ले जाना चाहता था ?’ कालीचरणचे पूछा और बच्चेका हाथ देखकर उन्होंने कहा—‘अब तो बिलकुल ठीक है, बुखार नहीं है, क्यों, क्या हुआ था ?’

रमाने कहा—‘वह देखो न, पड़ा है भीतर जंगली कहींका ।’

आश्चर्यसे कालीचरण और साथ ही कृष्णा दोनों उस कमरेमें गये, और देखते ही दंग रह गये, कालीचरणजीने दुःखसे मर्मांत होकर कहा—‘क्या हुआ महेशको ?’ कृष्णा हतबुद्धि होकर रमाकी ओर देखने लगी । रमा पहले ही अवाक् होकर पिताकी ओर देख रही थी । दयाल, रमा आदि सभीने एक साथ कहा—‘महेश कौन ?’

कालीचरणजीने महेशकी नाड़ी देखी और बोले—‘क्या हुआ इसको, महेश यहां कैसे आया ?’

रमा बोली—‘होगा और क्या ? बच्चेको तो मार ही दिया था इसने, यहीं सामने तो रहता है ।’

कालीचरणने कहा—‘रहता तो है, मगर किया क्या है इसने ?’

दयालने सारा फ़िसा आदिसे अन्त तक सुनाया, कालीचरणजी तो सुनकर सन्न रह गये । कृष्णाको सब बातें सुनकर इतनी व्याकुलता हुई कि वह उठकर दूसरे कमरेमें चली गयी ।

कालीचरणजीने कहा—‘दयाल ! तुमने यह क्या किया ? महेश और जादू ! अरे यह तो वही है, जिसके लिए कृष्णाके बारेमें बातचीत हो रही है । तुम लोगोंका दिमाग तो नहीं खराब हो गया ? जादू टोना भी कुछ होता है ? ओह, तुम लोग अन्धविश्वासमें आकर इतना अनर्थ कर सकते ? क्या समझा होगा बेचारेने, और बड़ेगांवमें नारायण बाबूके

सौगात

पास क्या मुंह दिखायेंगे, और इसका ही भगवान जाने क्या हाल हो !
बेचारा इतना भोला लड़का और तुम भी कितने सभ्य और शिक्षित !
विश्वास नहीं होता कि तुम ऐसी नादानी कर सकते हो । दयाल !
तुम्हें उस वक्त हो क्या गया था ?

दयालको अब तक अपनी मूर्खताका पता चल गया था । उसने
सिर नीचा कर कहा—‘क्या कहूँ, दूसरोंके कहनेसे वैसी ही बुद्धि हो गई ।
अब क्या करना चाहिए ?’

‘करना और क्या है ! डाक्टरने क्या कहा, बचेगा या नहीं ?’

‘अभी-अभी तो आया है, डाक्टरको दिखानेका मौका ही कहाँ मिला ?’

‘तब देखने क्या हो ? जाओ, डाक्टरको लाओ । अब तो जो
होना था, हो गया ।’ कालीचरणजीकी आवाजमें अत्यन्त शिथिलता
आ गई थी, निराश भावसे वे मदेशके मुंहपर नजर गड़ाये हुए थे ।

दूसरे कमरेमें जाकर रमाने देखा, कृष्णा एक कोनेमें खड़ी है ।
उसका मुंह सूखा हुआ है । आवाज सुनते ही कृष्णा दीदीसे लिपटकर
रोने लगी । बाहर कालीचरणजी अकेले रह गये थे, वे अपने आप ही कह
उठे—‘बेचारा बच्चेसे प्यार करता था । गोदमें उठा लिया था, तो क्या
अनर्थ हो गया था ? इसी बातके लिए उसे मौतकी सजा ?’

कृष्णा और रमा दोनोने यह बात स्पष्ट सुनी, कृष्णाको सान्त्वना
देते हुए रमाने कहा—‘जा, मुंह धो डाल ।’

कृष्णा दूसरे कमरेमें मुंह धोने गई, रमा भी उसीके पास जाकर
बोली—‘कृष्णा ! तू इन्हें पहलेसे जानती है ? पहले कभी इनसे मुलाकात
हुई थी ?’

कृष्णा बोली—‘कल ही तो सारे दिन हमारे यहां थे।’

रमाने कृष्णासे कुछ और भी पूछना चाहा, परन्तु उसने लजासे अपनी दृष्टि दूरी ओर ले जाकर मूक भाषामें उत्तर दिया और एक गहरी सास लेकर चुप रह गई।

कृष्णाकी इस कातरताको देख रमाकी मानसिक वेदना और बढ़ गई वह चुप न रह सकी, बोली—‘कृष्णा ! चिन्ता न करो, वे बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे। तुम विश्वास करो, हम उनकी सेवामें किसी तरहकी भी कमी न रखेंगे और ईश्वरने चाहा, तो बहुत जल्द तुम्हारी जोड़ी मिलेगी।’

कृष्णाको दीदीकी बातसे भरोसा तो हुआ, किन्तु एक अज्ञात आशंकाकी छाया उसके सुंदर स्वप्न रूपमें भलकने लगी।

डाक्टरको लेकर दयाल आ पहुँचा। सन्ध्या हो गई थी। बच्चा अपने आप ही उठ बैठा था—लगत था, जैसे वह नींदसे उठा हो। डाक्टरने महेशको देखा और इशारेसे काली बाबूको दूसरे कमरेमें ले जाकर कुछ कहा। दवाई लिखकर डाक्टर चले गये। कालीचरणजीने लौटकर कहा—‘दयाल ! महेशको रामगढ़ पहुँचानेकी व्यवस्था करो।’

दयालने कहा—‘डाक्टर क्या कह गया है?’

‘कुछ नहीं, अच्छा हो जायेगा, कुछ दिन लगेंगे। इसलिए रामगढ़ ले जाना ही अच्छा होगा।’

‘मगर बाबू ! इस हालतमें तो मैं नहीं ले जाने दूंगी। कसूर हमसे हो गया तो उस हमीं भोगेंगे, रास्तेमें कुछ हो गया तो ?’ रमाने कहा।

ममतासे कालीचरणजीकी हृदय भर आया, बोले—‘नहीं बेटी ! तुमको मैं क्या कुछ कहता हूँ ?’

सौगात

दयाल बोला—‘जरा होश आ ले, फिर देखा जायेगा, अभी तो आप भी आराम कीजिये ।’

कृष्णा यद्यपि कुछ न बोलती थी, मगर उसकी इच्छा थी कि मदेश को रामगढ़ पहुँचाया जाय । किन्तु कालीचरणजी रमा और दयालको दुखी करके जाना नहीं चाहते थे, इसलिये उस रातको वहीं रहना निश्चित हुआ ।

रातको कृष्णा और रमा मदेशके पास ही बैठी रहीं, दवा और इजेक्शनके बलपर मदेशके शरीरमें कुछ गर्मी आ रही थी, किन्तु वेदोशी अभी तक वैसी ही थी । कालीचरण अपनी दोनों लड़कियोंपर मदेशकी शुश्रूषाका भार देकर सो गये, दयालको रमा और कृष्णा दोनोंने ही जगा रहने नहीं दिया ।

कृष्णा बोली—‘तुम भी सो जाओ दीदी !’

रमाने कहा—‘तू सो जा बहन ! मुझे जागनेकी आदत है ।’

कृष्णा बोली—‘मुझे भी तो नींद नहीं आ रही है ।’

और जब रातके बारह बजनेको हुए, तो रमाकी आंखोंमें नींद भर-भर आने लगी, कृष्णा बोली—‘तुम सो जाओ न दीदी, मैं जाग तो रही हूँ ।’

जब रमा चली गयी और गहरी नींदमें सो गयी, कृष्णा एकटक मदेशके मुखको निहारने लगी । वह सोचने लगी—देवताओ जैसे व्यक्तिपर हाथ उठाते उन राक्षसोंको जरा भी दया न आयी ? एक बार चारों ओर देखकर वह फिरसे मदेशका मुँह देखने लगी । किन्तु वह अधिक देर तक देखती न रह सकी । उसका हाथ मदेशके माथेपर स्वयं ही जा लगा और सारे बदनमें बिजली-सी दौड़ गयी । उसने मदेश

का दाहिना हाथ भी अपने हाथमें ले लिया । उसका शरीर कांप रहा था । इसी वक्त उसने देखा, महेशके शरीरमें कुछ बल आया है, वह हिलने-डुलने लगा है और एकायक उसने आखें भी खोल दीं । कृष्णाने उसका हाथ छोड़ दिया ।

आखें खोलते ही महेशने आश्चर्यमें कृष्णाकी ओर देखा और बोला—‘कृष्णा...तुम यहां...मैं कहा हूँ?’

‘दीदीके घरपर ।’

महेश कुछ क्षण तो सोचता रहा, फिर बोला—‘दीदी ? कौन दीदी ! बच्चा कैसा है ?’

‘ठीक है । वह मेरी दीदीका बच्चा है । वह अब अच्छा हो गया है, तुम बोलो नहीं, डाक्टरने मना किया है ।’

‘बच्चा अच्छा है, ईश्वरका धन्यवाद । मैं उसे प्यार करता हूँ । किन्तु मैं क्या जानता था कि यह भी एक पाप है । मगर इसमें नका क्या कसूर, यह जादूमें अन्ध-विश्वास होनेका फल है ।’ कृष्णा चुप रही, बड़ी बड़ी आंखोंसे उसके गालोंपर केवल दो बूंद डुलक पड़े । महेशने कहा—‘कृष्णा ! अब मेरी समझमें आया कि मेरा क्या काम है । यदि अच्छा हो सका, तो इस अन्ध-विश्वासको नष्ट करनेमें अपना सारा जीवन लगाऊंगा । कृष्णा ! तुम रो रही हो, तुम खुश होओ, मैं भी खुश हूँ, मुझे आज अपने कार्यका पता चल गया, आज मुझे मालूम हुआ कि मुझे क्या काम करना चाहिये । कृष्णा ! तुम भी इस कामको करोगी और इस काममें मेरी सहायता करोगी ?’

कृष्णा बोली—‘तुम अच्छे हो जाओ, मैं तो तुम्हारे साथ हूँ ही ।’

गद्गद्, किन्तु भारीय आवाजमें महेशने कहा—‘तुम मेरा साथ दोगी ? दोगी,—मगर एक बात है, मैंने तुम्हारे पिताजीसे कह दिया था कि मैं शादी नहीं करूंगा, तुम उनसे कह दो, मैं शादी करूंगा और कृष्णाके साथ ही । कृष्णा ! तुम कह देना उनसे, नहीं तो वे कहेंगे

सौगात

जिद्दी है और देखो. एक बार बच्चेको तो दिखा दो, वह अच्छा हो गया न अब, ले आओ, उसे दिखा दो एक बार ?'

नेत्रोंमें आँसू भरकर कृष्णाने उसके मुखपर हाथ रखा और कहा— 'राजूको सुबह देख लेना, वह इस वक्त सो रहा है, तुम इस वक्त आराम करो, लोग क्या कहेंगे ?'

कुछ वितृष्णाका भाव लिये मधेश बोला— 'अरे सुबह होनेमें अभी बहुत देर है तुम ले आओ न राजूको ।' मधेशने यह सब इतनी तेज आवाजसे कहा कि कालीचरणसे लेकर बच्चे तक सभी हड़बड़ाकर उठ बैठे । स्वयं मधेशपर भी इस तेज आवाजका असर पड़ा, खूनके वमन फिरसे आरम्भ हो गये ।

चेष्टा की गई डाक्टरकी दवा देनेकी, किन्तु मधेशके हाथ-पैर तो ठण्डे हो चुके थे ।



महीनों शोकसागरमें निमग्न रहनेके बाद कृष्णा जब सावधान हुई, उसको ये शब्द याद आये— 'कृष्णा ! तुम भी इस कामको करोगी और इस काममें क्या तुम मेरी सहायता करोगी ?' उसे यह भी याद आया— 'मैं तो तुम्हारे साथ हूँ ही ।' गुनते-गुनते उसके मुँहसे निकल पड़ा— 'मुझे आज अपने कार्यका पता चल गया ।' उसा ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कोई उससे कह रहा हो— 'कृष्णा ! तुम्हें अपना वही कार्य पूरा करना चाहिये ।'

कृष्णाने आकाशकी ओर देखा । उसके चेहरेपर एक मुस्कुराहट एक क्षणके लिये आयी और लुप्त हो गई । इस मुस्कुराहटमें प्रसन्नता नहीं, निश्चयकी रेखायें स्पष्ट ही झलक रही थीं ।

कृष्णाने विवाह नहीं किया । वह समाजको अन्ध विश्वासके अन्धकारमें निकालनेके लिये अपनी सारी शक्ति लगाकर कार्यकर रही है ।
फरवरी १९३८

नर्तकी

नर्तकी माया रूप, गुण और शिद्धामें भी वैसी ही विख्यात थी, जैसी वह नृत्यमें थी। ज्ञानका लोभ उसे कभी न हुआ था। ज्ञानने स्वयं उसे अपनाया था। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं और ज्ञानियोंका संसर्ग उसे अनायास ही प्राप्त हुआ था। सोने और चांदीसे उसने खेल खेला था। वैशाली नगरीका वैभव उसके पैरोंपर लोटता था—वह उसे ठुकराती थी और फिर भी वह उसके पैरोंकी मादकताका चुम्बन करता था।

प्रातःकालका समय था। शयन-कक्षसे निकलते ही मायाने प्रातः कालीन नित्य कृत्य समाप्त किया और शृङ्गार-गृहमें आकर बृहदाकार दर्पणके सामने खड़ी हो गई। भींगी लटोंको उठाने एक बार बिखेर दिया, आंचल खिसककर स्कन्ध-प्रदेशपर रुक गया। युगल कपोल-लम्बित केश-राशिको दोनों हाथोंसे चिबुकमें दबाकर वह पुनः-पुनः अपना सौन्दर्य निरखने लगी। अनामिकामें लगी हीरेकी अंगूठी दर्पणकी चमकसे दमक उठी। हीरकादि मणियोंसे जड़ित स्वर्ण बन्द बाजूपर झिलमिलाने लगा। माया अपने ही सौन्दर्यपर मुग्ध हो गई। दासी पीछेसे कितनी बार बुला चुकी, किन्तु मायाको ज्ञात न हुआ।

सौगात

मायाने दर्पणमें खड़ी मायासे प्रश्न किया—‘किसके लिए ?’

और स्वयं ही उसने उत्तर भी दे दिया—‘प्रियतम उदयनके लिए ।’

दासीने पीछेसे पुकारा—‘देवि ! महाराज उदयन आपकी प्रतीक्षामें बहुत समयसे बाहर खड़े हैं !’

हास्योज्ज्वल मुखमें मायाने दासीकी ओर देखा । झपटकर उसे पकड़ लिया—‘महाराज उदयन ?’

‘हां देवि ! बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं !’

‘चलो, कहां हैं ?’

दासीने रोककर कहा—‘आपका शृङ्गार ?’

‘उफ ! मैं आती हूँ, उन्हें मेरे शयन-कक्षमें आदरसे बिठाओ ।’
और माया पुनः दर्पणकी ओर घूमी । क्षण-भर बाद उसने दासीको पुकारा—‘रम्भा ! ले पुरस्कार । आजका प्रातःकाल तेरे कारण मेरा स्वर्णिम प्रभात बना है ।’ और मायाने अपने हाथकी अंगूठी निकाल कर रम्भाके हाथमें दे दी । रम्भा जा ही रही थी कि मायाने पुनः उसे रोककर पूछा—‘महाराज उदयन आये हैं ?’

‘हां देवि !’

‘ओफ ! कितने दिनों बाद पधारे हैं वे !’ मायाने गद्गद कंठसे कहा रम्भा चुप रही ।

‘अच्छा रम्भा ! उनके साथ और कोई है ?’

‘नहीं देवि !’

‘निश्चय ही उन्होंने मेरा नाम लेकर सूचना देनेको कहा है ?’

‘हां, देवि !’

‘उनके मुखपर अवश्य ही प्रसन्नता थी ?’

‘हां देवि ! पहलेसे अधिक तेज उनमें मैंने आज देखा ।’

‘नहीं-नहीं रम्भा ! तूने पहले उन्हें नहीं देखा होगा, उनके मुखपर सदा ही एक अपूर्व तेज रहता है—रम्भा, तू नहीं जानती, वही तेज है, जिसके कारण मैं.....’ और माया दीवालपर स्थिर उदयनके चित्रकी ओर बड़ी ही तन्मयतासे देखने लगी । मायाको वह चित्र उस समय जैसे साकार तेज-पुंज-सा प्रतीत होने लगा ।

मायाने पुनः पूछा—‘क्या रथमें आये हैं ?’

‘नहीं देवि !’

‘तब निश्चय ही अश्वारोहण करके आये हैं ?’

‘हो सकता है देवि ! किन्तु यहांपर तो वे बिना अश्वके ही आये हैं !’

‘हैं, अश्वके बिना ? तब तो अवश्य उनके मनमें मुझसे मिलनेकी आतुरता रही होगी—ओः रम्भा ! उन्हें बिठाओ, मैं अभी आई—अच्छा रम्भा ! उन्होंने आते ही क्या पूछा था ?’

‘देवि ! उन्होंने पूछा था कि आप अभी शयन-गृहसे निकलीं या नहीं ?’

‘जो उन्होंने कहा वही बोलो !’ डपटकर मायाने रम्भाको भकभोरा

‘उन्होंने कहा.....उन्होंने आपका नाम लिया था ।’

‘मेरा नाम ! मेरा नाम !.....’ और माया पुनः उदयनके विशाल चित्रकी ओर देखकर दीर्घ निःश्वासके साथ बोली—‘उदयन !’

‘देवि ! बहुत समय हो गया, मैं उन्हें बिठाती हूँ ।’

‘हां रम्भा ! जा उन्हें बिठा ।’

सौगात

रम्भा जानेको प्रस्तुत हुई ही थी कि मायाने पुनः उसे अपने पास बुलाकर कहा—‘रम्भा ! देखना आदरसे उन्हें बिठाना । मेरे ही आसनपर उन्हें बिठाना—अच्छा ! ...और देख ! कहना—माया अभी आपके दर्शनके लिये व्याकुल होकर आ रही है । अच्छा ! क्या कहेगी ?’

‘कहूँगी देवी अभी...’

बात काटकर माया पुनः गरज कर बोली—‘मैंने जो कहा वही बता मूर्ख !’

क्षमा चाहते हुए रम्भाने कहा—मैं सब कह दूंगी...देवी ! मैं आपके ईप्सित अभिप्रायको समझती हूँ !’

‘अच्छा जा !’

रम्भा चली गई । माया अपने शृङ्गारमें व्यस्त हो गई !

नगरके बड़े-बड़े लक्षाधीशों और राजा-महाराजाओंकी एकान्त प्रार्थनाओं और कामनाओंको जहां माया बड़ी आसानीसे टुकरा चुकी थी, वहां उदयन ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसके लिये वह स्वयं आन्तरिक प्रार्थना कर चुकी थी और अपनी सतत प्रार्थनाओंके पलस्वरूप वह केवल उसका भ्रूक्षेप ही प्राप्त कर पाई थी, उसकी अंकशायिनी होनेका सौभाग्य अभी तक उसे प्राप्त नहीं हुआ था । वह गेज ही इसी आशामें रहती कि उदयन आयेगा और अपने प्रेमके अगाध समुद्रमें डुबाकर उसे स्वर्गसुख देगा । वह प्रातःकाल उठकर, उदयनके लिये शृङ्गारसे सुसज्जित हो जाती और सन्ध्या समय उस शृङ्गारको विफल होता देख निराशासे सो जाती । इसीलिये मायाकी आशा आज जब प्रातःकाल

ही फलवती होती दिखाई दी, तो अपने प्रेमीके लिये उसने अपना सबसे प्यारा शृंगार पहनना आरम्भ किया। बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे वह सज्जित होने लगी। अंगरागसे अभी निवृत्त होकर वह उदयनके चित्रसे पृष्ठ रही थी कि—‘क्या मैं अच्छी लगती हूँ?’

और मायाने अपना मुख दर्पणमें फिराया ही था कि रम्भाको देखकर चौंकी—‘देवी!’ उसने सुना।

‘अभी जाती हूँ रम्भा! बिठाया उन्हें?’

‘वे तो.....’

‘हां वे तो कहेंगे देरी हो रही है, मगर जाने न देना। जाओ तुम वहीं पर रहो।’

‘वे तो चले गये देवी!’

मायाके हाथका बहुमूल्य शिरोभूषण नीचे गिर पड़ा। धमसे एक आवाज जैसे सम्पूर्ण भवनमें गूंज उठी। मायाको अपने ऊपर जैसे विश्वास न हुआ।

‘चले गये?’ उसके मुखसे निकला।

‘हा देवी।’

‘कहा चले गये, क्यों चले गये, तुमने जाने कैसे दिया?’

‘बड़ पदले ही चले गये थे...’ क्षण-भरके मौनके बाद रम्भाने पुनः कहा—‘देवी! वह एक पत्र दे गये हैं।’

‘पत्र? कहा है पत्र?’

‘आपके शयन कक्षमें, आपके आसन पर रखा है।’

माया उसी अवस्थामें अपने शयन कक्षकी ओर दौड़ी, आसन पर

सौगात

पड़े हुए पत्रको शीघ्रतासे पढ़ने लगी, उसमें लिखा था—‘देवी ! मुझे क्षमा करना, मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करनेमें अपनेको असमर्थ पाता हूँ, मैं आज भगवान बुद्धकी शरणमें जा रहा हूँ—उनसे दीक्षा लेने, देखता हूँ वे मुझे अपनी शरणमें लेते हैं या नहीं, यदि उन्होंने अपनी शरणमें लिया तो मेरा जीवन सफल हो जायगा और यदि उन्होंने मुझे ठुकरा दिया तो बैशालीसे अपना सम्बन्ध तोड़कर किसी ऐसे स्थानमें चला जाऊंगा जहां संसारके बन्धन मुझे अपनी ओर आकर्षित न कर सकें ! तुम मेरी आशामें न बैठी रहो, इसीलिये यह पत्र दिये जा रहा हूँ । क्षमा करना देवी ! नमो बुद्धाय । बुद्धं शरणं गच्छामि ।

तुम्हारा — उदयन

पत्र पढ़ते-पढ़ते मायाके कानोंमें रास्तेका कोलाहल पड़ा, नगरके आबाल बृद्ध, बनिता संघबद्ध होकर ‘बुद्धं शरणं गच्छामि’ की आकाश ध्वनिके साथ अग्रसर हो रहे थे । मायाने रम्भासे पूछा—‘जैसा कोलाहल है रम्भा ?’

‘देवी ! भगवान बुद्धने आज बैशाली नगरीको पवित्र किया है, उन्होंने दर्शन करके अपने पापोंका प्रक्षालन करने आज नगरवासी उधर की ओर जा रहे हैं ।’

शयन-कक्षमें लगी उदयनकी हस्त-खचित मूर्तिको देखकर मायाके मुखसे निकला—‘भगवान बुद्ध !’ रम्भाने एक बार मायाके दांतोंकी किटकिटाहट सुनी ।

रम्भाने कहा—‘देवी ! मैं भी भगवानके दर्शनार्थ जाऊंगी, मुझे भी आजका अवकाश मिलना चाहिये ।’

क्रोधसे कम्पित अधरोंसे मायाने कहा—‘मूर्ख ! एक व्यक्ति जिसका शरीर हमारी तरह हाड़-मांससे बना है, जिसकी चेतना-शक्ति हमसे कुछ भी ज्यादा नहीं, जो संसारमें पैदा होकर सांसारिक सुखोंसे अपनी आत्मा को बंचित रखनेका अपराधी है, उसे तू भगवान कहती है ? जानती है, मेरे उदयनको किसने मुझसे छीना ? उसीने, वही हमारी जातिका शत्रु है । उदयन आज मुझे मेरा प्रेम, मेरा रूप लावण्य—सभी कुछ ठुकरा कर उस भिक्षुकी शरणमें गया है !.....और तू...तू भी जाना चाहती है ? भिक्षुगी बनना चाहती है ? रम्भा ! मायाकी विलास भूमिसे अधिक सुख तुझे स्वयं भगवानकी गोदमें भी नहीं मिल सकता । फिर बुद्ध तो एक मनुष्य है—दुख-सुख, पाप-पुण्य और स्वर्ग नर्कका अधिकारी देहधारी एक जीव ! रम्भा ! मेरे उदयनको एक भिक्षु कभी भी मुझसे नहीं छीन सकता ।’ और एकायक माया मूर्च्छित-सी होकर पलंग पर लेट गई ।

क्षण भर निस्तब्धता छाई रही ।

नागरिकोंका एक दूसरा टल ‘बुद्ध’ शरणं ग-छामि’ के मन्त्रके साथ मार्गको कोलाहल-मय करता हुआ जा रहा था ! माया उठते ही चिल्ला पड़ी—‘रम्भा ! रम्भा !! चलेगी तू बुद्धके पास, चल मैं भी चलूंगी’। रथ प्रस्तुत कराओ, मैं आती हूँ ।’

‘जो आज्ञा देवी ।’ कहकर रम्भा स्वयं प्रस्तुत होने और रथ प्रस्तुत कराने चली गई ।

पुनः श्रृंगार-गृहमें जाकर माया सोचने लगी । एक सन्यासी मेरे रूप लावण्य और ऐश्वर्यसे प्रतिद्वन्द्विता कैसे कर सकता है ? उस

सौगात

सन्यासीमें ऐसी क्या शक्ति है जिसपर उदयन मुग्ध है। उसमें कुछ नहीं, कोई शक्ति नहीं, यदि है भी तो वह अदृश्य है। किन्तु भेगी शक्ति स्पष्ट है, मुझमें क्या नहीं !... उदयन ! निश्चिन्त रहो, तुम तो तुम्हीं रहे, तुम्हारे गुरुको भी मैं यदि अपने वशमें न लाई तो मेरा नाम माया नहीं ! और मायाने श्रृंगारसे सुमज्जित होकर एकाबार अपनी आकृति को दर्पणमें देखा—‘किसके लिये ?’ सदाकी भांति उसके मुंहसे निकल पड़ा।

और उसने उत्तर भी अपने आप ही दे दिया—‘गुरु चेला दोनोंके लिये।’

रथ प्रस्तुत था। माया और रम्भा दोनों ही उसमें बैठकर मार्गकी भीड़में सम्मिलित हो गये। नगरवासी मायाके सुपरिचित रथको आता देख मार्ग दे देते थे। रथ आगे बढ़कर भगवान बुद्धके आश्रम पर जा लगा। नगर श्रेष्ठियोंकी पंक्ति जो भगवानको घेरे हुए थी मायाको आती देख मार्ग दे बैठी। माया पुष्पोंका कीमती हार लेकर बुद्धदेवके सम्मुख उपस्थित हो गई।

भगवान बुद्धके सौन्दर्यदीप्त तेजोयय आनन पर दृष्टि पड़ते ही मायाका सम्पूर्ण क्रोध सारी ईर्ष्या और अभिमान क्षण भरमें ही अदृश्य में विलीन हो गया। उस महा महिमामयी तेजोराशिके सम्मुख माया अपने रूप-लावण्य और ऐश्वर्यको अति नगण्य सा अनुभव करने लगी। लज्जासे उसका मस्तक नत हो गया। हाथ स्वयं ही जुड़ गये और वह क्षण भरमें ही भगवानके चरणों पर लोट गई। नागरिकोंकी ओरसे ध्वनि गूँज उठी—‘नमो बुद्धाय। बुद्धं शरणं गच्छामि।’

मायाने भगवानके चरणोंसे मस्तक उठाकर एक बार चारों ओर

दृष्टि डाली । हजारों नागरिकोंके बीच उदयनको उसने देख लिया । उसकी दृष्टि उसीपर स्थिर हो गई ! मायाके मुखमें पुनः एक बार मादकता आ गई, अभिमानने पुनः एक बार उसकी आ माको जकड़ लिया, अपने सामने उसे संन्यासियोंका वह जमघट कुछ तुच्छ-सा प्रतीत होने लगा । उदयनकी कातरता उसे स्पष्ट प्रतीत हो गई । उसके लिए असाधारण उदयन साधारण भिन्नवत जन समूहके बीच खड़ा बुद्धके दर्शनोंकी आकांक्षामें बार-बार अग्रसर होनेमें असफल हो रहा है । जन-समूहके बीच उसका अस्तित्व एक साधारण दर्शककी भांति हो उठा है । मायाका हृदय कराह उठा—लक्ष्मी और विलासकी साक्षात् मूर्तिका प्राणप्रिय उदयन आज एक साधारण संन्यासीके सामने कातरताकी ग्लानि लिये खड़ा रहे ?

आक्रोशमें माया मस्तक घुमाकर बुद्धदेवकी ओर देखना चाहती थी कि बुद्धदेवने स्वयं ही कहा—‘नारी ! संन्यास-धर्मका पालन करो । मानव-जीवनका सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य यही है । तुम विलासके स्तरसे उच्चासन पर पहुँच गई हो, दृढ़ता और मनःशुद्धिका संकल्प करो—निर्वाणकी तुम्हें प्राप्ति होगी ।’

बुद्धदेवके उठे हुए आशीर्वादके हाथपर दृष्टि डालते ही मायाको प्रतीत हुआ, जैसे असंख्य चन्द्रमाओंकी शीतल ज्योति वहासे निकल रही है और उसका मनस्ताप जैसे उस ज्योतिके सामने क्षण-मात्रके लिए भी स्थायी न रहना चाहता हो ।

मायाका मस्तक पुनर्বার भगवानके चरणोंपर गिर पड़ा । उठते ही आकुल स्वरमें उसने कहा—‘प्रभु ! एक आकांक्षा है ।’

सौगात

मन्द स्मितसे भगवान बुद्धने कहा—‘कहो ।’

‘जीवन-भर जिस पाप-पंकिलमें लिपटी रही, उससे मुक्त होनेके लिए एक बार अपने अलभ्य चरण-रजसे मेरा घर पवित्र कर दीजिये प्रभु !’ और मायाने हाथ जोड़ दिये ।

‘अच्छा !’ कहकर भगवानने नयन मूंद लिए ।

माया धीरे-धीरे वहांसे लौट पड़ी । जन-समूहसे एक और ध्वनि निकली—‘बुद्धं शरणं गच्छामि ! नमो बुद्धाय !’

माया रथमें बैठी ही थी कि उसने पाससे जाते हुए उदयनको देख लिया । अपनेको संयत रखती हुई भी मायाके मुंहसे निकल ही पड़ा—‘महाराज उदयन !’

उदयनने मायाकी ओर देखा । मायाके आननपर प्रभातकी अरुणिमा-सी छा गई । क्षण-भरके लिए वह भूल गई कि वह कहांसे आ रही है और क्या करके आ रही, वह बोली—‘आइये रथमें !’

उदयन रथमें बैठ गया । मायाको जैसे स्वर्ग मिल गया । उदयन का स्पर्श पाते ही उसके सम्पूर्ण शरीरमें एक आल्हादकर रोमांच छा गया । उसकी आंखें स्वयं ही बन्द हो गईं ।

उदयनने कहा—‘देवी ! मैं तुम्हें बधाई देता हूँ । मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि तुमने महाप्रभुको अपने घरमें निमन्त्रण देनेमें सफलता प्राप्त की है ।’

‘हां महाराज ! मैं जानती थी कि आपको इस संवादसे अवश्य प्रसन्नता होगी ।’

‘देवि ! प्रातःकाल मैं बिना तुमसे मिले ही चला गया था, आशा

‘तुमने मुझे क्षमा कर दिया होगा !’ सुनकर मायाका हृदय अल्हादसे भर गया, फिर भी वह बोली—‘मुझे आपसे ऐसी आशा नहीं महाराज !’ और कहते-कहते मायाके मुखकी मादकता क्षण भरमें मिट गई । महाप्रभु बुद्धदेवके वचन उसके कानोंमें गूँज उठे ।

‘मुझे क्षमा कर देना, देवि !’ उदयनने कहते हुए मायाके दोनों हाथ अपने हाथोंमें ले लिये । मायाका हृदय कांपने लगा, वह सोच भी न सकी कि क्या करे ? रम्भा ताड़ गई बोली—‘देवी ! धैर्यसे काम लीजिये !’

मायाने धीरेसे अपने हाथ खींच लिये ।

उदयनने कोमल शब्दोंमें कहा—‘देवी ! क्या मैं विश्वास कर सकता हूँ कि तुम मुझे वास्तवमें प्रेम करती हो ?’

कांते हृदयसे मायाने कहा—‘हां उदयन !’ और स्वयं ‘उदयन’ कहते हुए चौक उठी—‘क्षमा कीजियेगा महाराज ! आपका नाम मेरे मुंहसे निकल पड़ा है ।’

‘मैं एक बार फिर सुनना चाहता हूँ माया ! एक बार फिर कहो !’ उदयन बोला—‘उदयनके लिये आराधनाकी पूर्व स्मृति पुनः मायाके हृदयमें जाग्रत हो उठी । मायाने उदयनके अंक्रममें अपना सिर रख दिया । रम्भा रथके गवाक्षसे बाहर देखने लगी ।

मायाके मस्तक पर हाथ सुह्लाते हुए उदयनने बड़े कोमल शब्दोंमें कहा—‘माया ! मैं एक चीज़ मांगता हूँ, दोगी ?’

माया जैसे कृतार्थ हो गई । उसकी इच्छा हुई कह दूँ—जब अपना सर्वस्व ही दे चुकी हूँ तो और क्या मांगते हो ? किन्तु उसने जैसे किसी

सौगात

अज्ञातभयकी आशंकासे नहीं कहा, वह केवल इतना ही बोली—‘कहिये ?’
उसने अंकसे मस्तक उठा दिया और उदयनकी ओर देखने लगी ।

उदयन बोला—‘विश्वास करूँ ?’

माया बोली—‘कहिये ।’

‘महाप्रभुका निमन्त्रण मुझे दे दो । तुम्हारे बदले मैं महाप्रभुकी निमन्त्रण दूँगा !’

मायाकी जैसे कानोंकी तालियां भंडूत हो उठीं । उसके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकला ।

निस्तब्ध नीरव वातावरणको भंग करते हुए उदयनने पुनः कहा—
‘मौन क्यों हो माया ?’ जानती हो, इसके लिये मैं तुम्हें क्या देनेवाला हूँ ?’

क्षण भर चुप रहकर उदयनने पुनः कहना आरम्भ किया—‘मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिकी एकमात्र स्वामिनी तुम्हें बनाऊँगा । जिस अतुल धन राशिका मैं आज तक अकेला स्वामी था, अबसे उसकी स्वामिनी तुम बनोगी माया...केवल तुम !’

‘महाराज उदयन !’ मायाके मुखसे निकला । शब्दोंकी कर्कशतासे उदयनका हृदय धक् हो गया । मायाकी गर्वाली आंखोंमें अपनी आंखें ढालकर उदयनने पुनः कोमल शब्दोंमें कहा—‘जिस ऐश्वर्य और बिलासिताकी आराधना तुमने जीवनका लक्ष्य बना रक्खा था, क्या उसकी पूर्णतामें मेरी धनराशि कुछ भी काम न आ सकेगी माया ?’

माया ठहाका मारकर हंस पड़ी । मौन, किन्तु हास्यसे छलछलाता व्यंग्य मानो उदयनके हृदयमें तीरकी तरह चुभ गया । विश्वास करनेको उसका जी न चाहा ।

मुश्किलसे हंसी रोककर मायाने कहा—‘अब कुछ काम न आयेगी ।’

उदयनको विश्वास हो गया, ऐश्वर्य और बिलासिताकी प्रतिमूर्ति मायाके हृदयमें भगवानकी अतुल तेजोराशिकी किरण जगमगा रही है, उसे उसके त्यागमय व्रतसे निकालकर धनके भंडारमें खींचना मुश्किल ही नहीं, असम्भव भी है ।

वह बोला—‘माया ! क्या किसी भी शर्तपर तुम मेरी इस तुच्छ याचनाको स्वीकार नहीं कर सकती ?’

उदयनकी कारुणिक भंगिमासे मायाका हृदय द्रवित हो गया । वह कुछ कहना ही चाहती थी कि उदयनने पुनः कहा—‘क्या तुम्हारे प्रेममें इतनेसे त्यागकी भी सामर्थ्य नहीं माया ?’

मायाके नेत्रोंमें चित्रसे खींचते चले जाने लगे । अपने पीछले जीवनका एक-एक दिन उसे साफ-साफ दिखाई दिया । आजके प्रातःकाल का उदयनका व्यवहार भी उसके सामने आ गया । नारी जातिके प्रति पुरुषोंकी स्वार्थ बुद्धि भी उसे स्पष्ट प्रतीत होने लगी । निराशाके अन्धकारमें आशाकी एकमात्र किरण महाप्रभुका आदेश ही उसे दिखने लगा । उसने साफ-साफ कह दिया—‘मुझे क्षमा कीजिये महाराज ! मैं ऐसा करनेमें असमर्थ हूँ ।’

उदयनके मस्तकपर जैसे पृथ्वी भरका भार प्रतीत होने लगा ! मुख पर कालिमा छा गई । उसने पुनः साहस करके पूछा—‘क्या यह नहीं हो सकेगा माया ?’

‘नहीं—कभी नहीं !’ दृढ़तासे माया बोली ।

सौगात

रथ मायाके भवनके सामने खड़ा हो गया । रम्भाने सहारा देकर मायाको उतारा । उदयन उतरते ही दूसरे मार्गसे बाहर चल पड़ा ।

माया जैसे भगवान बुद्धकी प्रतीक्षामें अपने पूर्व पंकिलसे मुक्त होती हुई अपने जीवनको सफल बनाने लगी ।

मार्च १९४२

लापरवाह

आंसू देखने ही न देते थे । सब कुछ अन्धकारमय हो रहा था ।
पर जब जरीसे जड़ी एक लाल रंगकी साड़ी पहने कोई आकर
खड़ा हुआ, तो वह धुंधलापन भी पहचान गया ; अरे सामने सुहाग-
भरी गौरी ही तो खड़ी थी, गौरी—गौरी—मेरी गौरी...मेरी—और
एक दिन... ।

‘गौरी ठीक ही कहती थी !’—हंसते हुए एक लड़की बोली थी ।

‘क्या कहती थी ?’ मेरे हृदयमें जिज्ञासा थी ।

‘कि आप बड़े ही लापरवाह हैं !’ कहकर उसने जैसे ताना दिया !

‘क्यों ?’—मेरी समझमें नहीं आया । माथेपर बल पड़ गये थे !

‘वही कहती थी—क्यों ? क्या कैसे ? मैं क्या जानूँ, उसीसे जाकर
पूछिये न !’

‘समझा नहीं !’

‘क्यों समझने लगे ! तभी तो लापरवाहकी उपाधि मिली है !’
और हंस दी, फिर चुटकी ली—‘समझ ही होती, तो समझनेके लिये
उसीकी बातें क्या कम थीं ?’

सौगात

‘बातें—गौरीकी बातें—कैसी बातें—उसने तो मुझसे आज तक कोई बात नहीं की। समझने या न समझनेका सबाल ही नहीं उठता। खाली चुपसे तो कुछ भी समझा जा सकता है और कुछ नहीं भी।’ मैंने सच्ची सफाई पेश की।

‘कलाकार होकर—इतने विद्वान होकर भी मौन भाषा नहीं समझते, यह नहीं जानते कि बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं, जो न कहनेसे ही ठीक कही जाती हैं।’

‘हूँ।’—कहा मैंने, लेकिन नजर उठाकर देखा, तो गौरीके फ्लैटके सामने अपनेको खड़ा पाया था। और इतनेमें ही साभ वाली लड़की अपने फ्लैटपर खटपट करती चढ़ गयी थी।

बात कुछ अधूरी-सी रह गयी थी, और मैं सब कुछ सह सकता हूँ, दुविधामें पड़े रहना मुझे पसन्द नहीं—यही सोच रहा था कि गौरी सामनेसे आती दिखाई पड़ी, बोली—‘मैं आपको ही देखने आ रही थी।’

‘क्यों, खैर तो है?’

‘पिताजीकी तबीयत ज्यादा खराब है। आपको बुला लानेके लिए कहा तो सबेरे ही था, पर...।’

‘तो सुबह ही क्यों नहीं आई?’

गौरी कुछ न बोली, लेकिन उसकी आंखें आंसुओंसे कुछ कहलाना चाहती थीं।

‘अच्छा, तो अन्दर खबर कर दो!’

‘नहीं।’—और मेरा हाथ पकड़कर वह मुझे अन्दर खींच ले गई। भीतर गया। देखा, बृद्ध घोषाल बाबू आंखें बन्द किये एक तख्त

पर लेटे हैं। सिरहाने पड़ी बेंचपर मेरे बैठते-बैठते गौरी बंगलामें अपने पिताजीसे बोली—‘बाबा, वे आये हैं !’

‘सोने दो न !’ मैंने हल्का-सा अनुरोध किया, लेकिन इतने ही में घोषाल बाबूने आंखें खोल दीं।

गौरीने फिर कहा—‘सुरेश बाबू आये हैं बाबा !’

दोनों ही मुझे देख रहे थे, लेकिन मेरे मुंहसे सहानुभूतिका एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। किसी तरह कोशिश करके मैंने कहा—‘आप जिस चिन्तासे व्यथित होकर बीमार पड़ गये हैं, वह आज दूर हो गई है, लीजिये।’ और एक हजारका एक चेक घोषाल बाबूके हाथमें दे दिया।

घोषाल बाबूने कांपते हुए हाथोंसे उसे पकड़ा। मुखपर आश्चर्ययुक्त आनन्द आलोकित हो उठा—नेत्रोंमें कृतज्ञता भी। वे उसे हाथमें पकड़े देखते-देखते ही रह गये—और गौरी ? वह भी गद्गद हो रही थी। एक अजीब प्रसन्नता, कृतज्ञता और भद्धाका भाव उसके आननसे टपक रहा था—कुछ लजाई-सी, शरमाई-सी भी थी, और मुझे देखते-देखते न जाने कहाँ खोई-सी।

इस विचित्र वातावरणकी नीरवता बृद्धने भंग की—‘तो सुरेश बाबू आपको किन शब्दोंमें धन्यवाद.....।’

‘धन्यवाद—धन्यवाद—कैसा धन्यवाद—किसके लिए धन्यवाद—धन्य-बा.....’और वह एक हजारके चेकका इतिहास पढ़ने लगा—

...उस दिन घर लौटा, तो जरा देर हो गई थी। चुपचाप घर पहुँचकर पड़ रहनेका विचार था ; पर अभ्या, तो देखा कि एक बृद्ध

सौगात

बंगाली महाशय मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे आते ही नमस्कार करके बोले—‘आप ही हैं सुरेश बाबू, सिनेमामें काम करते हैं?’

‘जी हां, आइये—बैठिये।’ मैंने दरवाजा खोलकर उन्हें अन्दर बुलाया। कहनेको तो कह दिया इतनी सभ्यतासे, इतने शिष्टाचारसे, लेकिन गुस्सेका पारा बहुत चढ़ गया था। मन कहता था कि कह दो—‘अभी निकल जाइये, यहांसे!’

वे बैठ गये। मैंने बनावटी हंसी हंसते हुए कहा—‘कहिये?’

वे बोले—‘आप नहीं जानते, हम इसी बिल्डिंगमें नीचेके फ्लायटमें रहते हैं। हमने सुना कि आप सिनेमामें काम करते हैं, हमें बहुत खुशी हुई। आप तो वहां डिरेक्शन करते हैं न?’

मैंने कहा—‘इतनी जंगी बिल्डिंग। इसमें इतने घर और न जाने कितनी तरहके आदमी रहते हैं, आखिर किसे-किसे जानूं?’

इसके बाद मैंने उन्हें अपनी सारी योग्यता और पोजीशनका व्यौरा बता दिया। भूखके मारे आते कुलबुला रही थीं, फिर भी मैं उनकी उपेक्षा न कर सका, क्योंकि वृद्ध महाशय बड़े संकोच और शिष्टतासे बातचीत कर रहे थे। मैंने पूछा—‘और आप.....?’

‘मैं—मेरा नाम मणिकान्त घोषाल है।’

फिर उन्होंने बतलाया कि मैं एक ‘खबर कागज’ का सम्पादक था। फिर सरकारी नौकरी की थी, जिसे असहयोग-आन्दोलनमें छोड़ दिया। तबसे बेकार हूँ। दो हजारका बीमा कराया था, उसीसे किसी तरह खर्च चल रहा है। लेकिन एक लड़की सयानी हो गई है। शादी उसकी करनी है। रुपयेकी सख्त जरूरत है। एक सिनेमाकी कहानी लिखी है, वह अगर बिक जाय, तो कन्या-दान आसानीसे हो जाय।

लेकिन इस 'अगर' से 'मगर' बहुत बड़ी थी। मैं चुप रहा। मुझे चुप्पी साधे देख वह बोले—'देखो भाई, मुझे नामकी जरूरत नहीं। नाम आप अपना दे सकते हैं। मुझे तो बस ५००) रुपये मिल जाने चाहिए। और आप इस कामको आसानीसे करा सकते हैं !'

उनका मतलब था कि कहानी लेकर मैं उन्हें अपने पाससे ५००) दे दूँ—और इस तरह उनकी मदद करूँ। लेकिन मेरे पास रुपया होता, तब तो दया, धर्म, सहायताकी बात उठती। फिर भी मैंने कहा—'आप कहानी सुनाइये। कामकी होगी, तो कोई न कोई प्रबन्ध किया जा सकता है।'

'अच्छा, तो हम आते हैं।' कहकर वे चले गये।

लेकिन मेरी नौद हराम हो गई। बुड्ढेकी चिन्ता मेरे सिर सवार हो गई—लड़कीकी शादी और दहेज !—दहेज ! बिना इसके काम कैसे चल सकता है ! तो जैसे भी हो, इनकी सहायता करनी ही होगी !

घोषालबाबू हाथमें कुछ कागज लेकर आये और बैठते हुए बोले—'आपको कुछ कष्ट दे रहा हूँ, क्षमा कीजियेगा।

'नहीं, कोई बात नहीं, आप सुनाइये।'

वे कहानी सुनाने लगे। कहानी बहुत अच्छी थी और मुझे यकीन हो गया कि अगर एक हजार नहीं, तो सात-आठ सौ तो कहीं गये नहीं। बाइरेक्टर तो इसे सुनकर लेखकका हाथ चूम लेगा। मैं इन्हीं आशाओं में डूब रहा था कि एक महीन आवाज आई—'बाबा !'

घोषाल बाबू बंगलामें बोले—'चाय लाई हो बिटिया ?'

और उसने अपनी भाषामें ही उत्तर दिया—'ले आई हूँ बाबा !'

सौगात

‘भीतर ले आओ !’

एक चौदह-पन्द्रह वर्षकी लड़की दो प्याले चायके लेकर भीतर आई ।

घोषाल बाबू मेरी तरफ होकर बोले—‘यही मेरी लड़की है—गौरी !’
और गौरीकी तरफ मुड़कर बंगलामें बोले—‘यही हमारे सुरेश बाबू हैं—
फिल्म-संसारके एक बड़े आदमी ! बड़े सज्जन हैं । मुझे बहुत भले लगे ।

गौरीने हाथ जोड़कर चुपकेसे नमस्कार किया । मैंने उत्तर दिया,
पर वह ठहरी नहीं । चली गई ।

चाय अपने सामने देखकर मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई, मैंने कहा—
‘जमा कीजियेगा घोषाल बाबू ! कुछ बातोंमें मुझे चायका ध्यान ही नहीं
रहा । यहीं बननी चाहिए थी । व्यर्थ ही आपको कष्ट उठाना पड़ा ।’

‘नहीं-नहीं, सब आपका ही तो है । आपकी फैमिली कहां है ?’

‘फैमिली कैसी घोषाल बाबू ?’

‘आपकी पत्नी—घरके लोग ?’

‘मैं अकेला हूँ । मेरा और कोई नहीं है ।’

‘और कोई नहीं ?—क्या कहते हैं ?’

‘जी, ठीक कहता हूँ !’

‘अभी तक आपका विवाह नहीं हुआ ! बड़ा ताज्जुब है ! तब तो
आपको बड़ा कष्ट होगा ।’

‘खैर, छोट्टिये इस घरेलू जंजालकी बात, तो फिर कहानीका क्या
किया जाय ?’

‘जैसा आप उचित समझें !’

‘कहानी तो ठीक है, पर उसे अभी सिनेमाके फार्ममें गढ़ना होगा !’

‘आप जो भी ठीक समझें, करें । हमें कोई आपत्ति नहीं ।’

‘तो कलसे रोज सुबहको आप यहां आ जाया करें । हम लोग साथ मिलकर विचारकर उचित संशोधन कर लेंगे ।’

यह कार्यक्रम निश्चित हो गया और दूसरे दिनसे ही चलने लगा । हम लोग खुले दिलसे कहानीकी आलोचना-प्रत्यालोचना करते थे और समुचित परिवर्तन तथा परिवर्द्धन करते जाते थे, और रोज ही गौरी चाय और नाश्ता ले आती और अक्सर कहानीकी बहस दिलचस्पीसे सुनने बैठ जाती । कुछ समझती थी या नहीं, सो नहीं कह सकता ; लेकिन उसकी मुद्रासे यह जरूर स्पष्ट था कि वह तन्मय हो जाती और अगर मुझे अपनी इस तन्मयताको तोड़ते देख लेती, तो लजाकर लाल हो जाती ।

दिन यों ही बीतने लगे । कहानी प्रायः आधी बन गई थी । पहले जब दिन-भरका थका-मांदा क्लान्त मन कमरेमें वापस लौटता था, तो सोते ही रहनेको जी चाहता था । सबेरा जल्दी मालूम होता और मुझे क्रोध आ जाता था । अब रातको सोता हूँ, तो कल सबेरेकी सरस आशाओंको स्वप्नोंकी जगह आंखोंमें लेकर—और सबेरा अब निष्ठुर हो चला था—निष्ठुर प्रेयसीकी तरह ही—अब वह देरसे होता लगता था । मैं जगकर ही अक्सर क्षितिजपर लालिमाकी एक रेख देखनेके लिए आकुल प्रतीक्षा करता रहता !

एक दिन सबेरा हुआ तो, लेकिन नहीं हुआ ।

आठ बजे । साढ़े आठ बजे—नौ बजे और बजते ही चले गये । घोपाल बाबू नहीं आये, नहीं आये । जी करता था कि नीचे जाकर गौरीसे ही क्यों न पूछ लूं कि क्या बात है, क्यों नहीं आये ? अरे

सौगात

नहीं आये, तो मुझे इतनी फिक्र क्यों ? काम जिसका है, उसे फिक्र हो ; लेकिन नहीं-नहीं, काम उनका ही तो नहीं है—

इतनेमें ही गौरी चाय-नाश्ता लिये सामने खड़ी थी, बोली—‘बाबा, आज नहीं आ सके, शरीर खराब है ।’

गौरीकी हिन्दी मुझे प्यारी लग रही थी । मैंने पूछनेके लिए होंठ भी न खोल पाये थे कि वह जा भी चुकी थी । मैं हताश बैठा रह गया ।

और एक दिन बीतनेके बाद, एक पखवारा भी ऐसे ही बीत गया । घोषाल बाबू नहीं आये, और गौरी भी नहीं आई । मेरी चिन्ता बढ़ गई—मेरा नौकर चाय लाया, तो मैंने उससे पूछा—‘क्यों रे, गौरी तो किसी वक्त मुझे देखने नहीं आई थी ?’

‘नहीं तो । उसके पिता आजकल बीमार हैं । टायफायड है !’

‘टायफायड ! तुमसे किसने कहा ?’

‘कल उन्होंने मुझसे दवा मंगाई थी । डाक्टर कहता था कि हालत अच्छी नहीं है, संभालकर रखना चाहिए ।’

‘उनके पास कोई नौकर-चाकर नहीं है क्या ?’

‘नहीं । गौरी है और उसकी मां । बस, और कोई नहीं ।’

मैं परेशान हो गया । कारण समझते देर नहीं लगी । पैसेकी तंगी हारी-बीमारीमें तो और भी खल जाती है । देनेको तो मैं ही दस-पांच रुपया दे सकता हूँ, पर उससे क्या होगा ? कहानी अभी तक बिकी नहीं । हो तो कैसे क्या हो ? कहानी तो पूरी हो आयी है, दो एक सीन शेष हैं, सो आज पूरे कर लूंगा, लेकिन कोई ऐसा भलामानस तो नहीं है कि रुपया मांगनेके साथ ही फोरन् दे दे । तब ? खैर, किसी

तरह जल्दीसे जाकर कहानी समाप्त कर दी । फिर तबियतमें आया कि घोपाल बाबूको यह खुराखबरी सुना आज्ञा और गौरीको भी, लेकिन खाली हाथ, बिना पैसेके खुरी कैसी ? आज्ञाकी दुनियामें तो पैसा और खुशी पर्यायवाची हैं, फिर भी चल दिया । घोपाल बाबूका दरवाजा बन्द था । जैसे जानमें जान आयी, भूल आपही ठीक हो गई । फिर लौट आया और सीधे आफिस चला गया । वहां डाइरेक्टरसे मिला । कहानी उन्हें बहुत पसन्द आयी और मंजूर भी कर ली, लेकिन रुपयेके लिये 'तीन महीने बाद' कहा । मेरी जैसे जान निकल गई । साइस बटोरकर मैंने लेखककी परिस्थिति तिल-तिल समझायी और मुझे सफलता मिल गई । एक हजारका चेक मेरे हाथमें था ।

हवाके घोड़ेपर सवार होकर मैं घरकी तरफ भागा । गौरी—घोपाल बाबू—ओह ! एक अप्रत्याशित आनन्द, यही सोचता आता था ।

मुहल्लेमें घुसा ही था कि कालेजसे लौटती हुई लड़कियोंका एक दल मिल गया । संकरा रास्ता, और इतनी सारी लड़कियां कि रास्ता घिरा हुआ था । मैं किसी तरह पीछे-पीछे चलने लगा । पर आगे बढ़नेकी चेष्टा मेरी उत्सुकता बराबर कर रही थी । वे धीरे धीरे जा रही थीं । मैंने दीवालका हाथसे सहारा लिया और एक छुलांग मारी । गिरते-गिरते बचा । लड़कियां हंसने लगीं—ठहाका मारकर । मैं झेंप गया । लम्बे-लम्बे डग बढ़ाये, पर पीछेसे किसीने पुकारा—'सुरेश बाबू !' मैं रुक गया ।—'बड़ी आर्टिस्टिक चाल चलते हैं आप । हमने तो समझा था कि आप अब गिरे, अब गिरे । हम लोगोंको मदद करनी पड़ेगी, लेकिन आप क्यों गिरने लगे—ऊंचे चढ़ते ही हैं, आर्टिस्ट जो ठहरे ?'

सौगात

‘इसके मानी हैं कि मेरे गिरनेसे आपको खुशी होती ! क्यों ?’

‘खुशी तो शायद न होती, पर एक आर्टिस्टको सहायता करनेका सौभाग्य तो अवश्य ही प्राप्त होता !’

‘तो क्या वह सौभाग्य गिराकर ही मिल सकता था ? और फिर आर्टिस्टमें ही कौन-से सुखार्थके पर लगे होते हैं ? क्या वह आदमी नहीं होता ? फिर कोई विशेष मोह क्यों ?’

‘आर्टिस्टके लिये हमारा ही नहीं, सारे संसारका मोह है । लोग पैसा खर्च करके आर्टिस्टोंको सिनेमामें देखने जाते हैं, उनका सुख-दुख वे केवल पर्देपर देख ही सकते हैं, चाहने पर भी कोई मदद नहीं कर सकते ! पर यहां वह अवसर हमें आसानीसे मिल जाता ।’

‘वह अवसर तो बिना किसी दुर्घटनाके भी आप लोगोंके चाहनेपर मिल सकता है । आप लोगोंकी सहायता भला कौन स्वीकार नहीं करेगा ! खैर, छोड़िये इन भावुकताकी बातोंको । आप लोग अपना परिचय तो दीजिये ।’

उसी लड़कीने कहना शुरू किया—‘हम सब इसी मुहल्लेमें रहती हैं, और मैं तो आपकी ही बिल्डिंगमें रहती हूँ । हम सब लोग यहीं कालेजमें पढ़ती हैं । गौरी मेरी सहेली है, उसीसे आपकी तारीफ सुनी थी । एक दिन आपको दिखाकर उसीने कहा था—‘सुरेश बाबू यही हैं, हमारी बहुत मदद करते हैं, बड़े उदार हैं, इनके दिलमें बड़ी दया—’ सचमुच सुरेश बाबू, गौरीके कुटुम्बकी सहायता आपको करनी चाहिये । बेचारे बड़ी मुसीबतमें हैं और आजकल तो उसके पिताजी बीमार भी हैं !’

‘गौरी-गौरी—’ मैं जैसे सोनेसे जागा, और अपनेको संभालकर बोला—‘ओह, अच्छा जाता हूँ !’

‘चलिये, मैं भी वहीं चल रही हूँ ।’

और लड़कियोंने अपने-अपने घरका रास्ता लिया । मैं और गौरीकी सहेली साथ चलने लगे । उतावली मेरे पैरोंकी चालको जरूरतसे ज्यादा तेज किये दे रही थी । मैं भागा-सा जा रहा था । सोचा—क्या औरतोंके साथ इसी तरह चला जाता है, कैसा पागल हूँ मैं; इतने में ही वह काफी पिछड़ गयी थी ; वहींसे चिल्लाकर बोली—‘सुरेश बाबू, भागते क्यों हैं, साथ ही चलिये !’

मैं रुक गया । अपनी बात रखनेके लिये कहा—‘मैं तो नहीं भाग रहा हूँ । आप ही धीरे-धीरे चल रही हैं !’

‘लेकिन आर्टिस्ट होते हुए भी सुरेश बाबू आपको स्त्रियोंके साथ चलना नहीं आता !’

‘तो क्या यह जरूरी क्वालीफिकेशन है आर्टिस्टकी—कि वह स्त्रियों के साथ रेंगता हुआ चले ?’

‘गौरी ठीक ही कहती थी ।’—हंसते हुए वह बोली थी ।

वही गौरी सामने खोई-सी बैठी है । फिर धन्यवाद, धन्यवाद—इसकी क्या अब भी कोई जरूरत है ?

‘तो धन्यवाद देनेकी क्या जरूरत है घोषाल बाबू । जैसे आपका काम, वैसे मेरा काम ! और आप दवा किसकी करा रहे हैं ?’ —कहकर मैंने गौरीकी तरफ मुंह किया ।

सौगात

‘डाक्टरके पास भेजनेको कोई आदमी ही नहीं मिलता । एक होम्योपैथिक दवा खा रहे हैं, लेकिन कुछ ठीक नहीं होता !’

‘कोई आदमी नहीं—तो मुझसे क्यों नहीं कहा ? मेरे नौकरसे ही कह दिया होता ! आखिर संकोच किस बातका ?’ मैंने साश्चर्य पूछा ।

‘सुरेश बाबू !...सब आपकी ही तो दया है’—और दीनता ही जैसे उनकी आंखोंसे बोल रही थी ।

रुपया सबसे बड़ा इलाज है, सो वह अब मौजूद था । घोषाल बाबू अच्छे हो गये थे । अब केवल एक बीमारी और दूर करनी थी—उसके लिये एक सुयोग्य वरकी तलाश थी । एक दिन घोषाल बाबू मेरे पास आकर कहने लगे—‘भाई, आपकी दया हम कभी नहीं भूल सकते । एक महीनेके लिये मैं घरसे जा रहा हूँ । घरको कभी-कभी देखते-भालते रहियेगा ।’—स्वरमें विनम्रता बहुत थी । मैंने कहा—‘आप फिक्र न करिये, सब ठीक ही रहेगा । आप गौरीसे कह दीजिये कि जिस चीजकी जिस वक्त भी जरूरत हो, तुरन्त मुझसे कहे ।’

‘हां-हां, हमने पहले ही कह दिया है ।’ कहकर वे चले गये ।

सात दिन बीत गये, लेकिन गौरी एक बार भी नहीं आयी । मैंने सोचा—वह तो मुझे लापरवाह समझती है, फिर क्यों मेरे पास आने लगी ? मैं भी नहीं जाऊंगा, फिर ऐसे ही सही—और मेरी नजर दरवाजे पर किसीके खड़े होनेका आभास पाकर उधर ही चली गई ! गौरी ही तो थी ! मैंने कहा—‘आओ गौरी !’

‘माने चाय पीनेके लिये बुलाया है ।’—गौरीने भीतर पैर रखते हुए कहा । मैंने जरा स्वाभिमानपूर्ण स्वरमें उत्तर दिया—‘आज तुम लोगोंको मेरी याद कैसे आयी ? इधर क्यों भूल पड़ीं ?’

‘हमारी बात छोड़िये । लेकिन आपको भी तो हम लोगोंकी याद नहीं आयी । याद आनेपर भी हम तो कुछ नहीं कर सकते थे, पर क्या आपको भी नहीं आना था ?’

‘क्या तुम्हें यहां आनेमें कोई अड़चन थी ? क्या कोई नाराज होता है ? ‘हम तो कुछ नहीं कर सकते थे’ का क्या मतलब ?’

‘नहीं, पर...’

‘पर मैं परवाह नहीं करूंगा—इसी डरसे, क्यों ?’

‘यह भी हो सकता है, पर यह सब आपसे कहा किसने ?’

‘हमारे मनने ! सच कहो गौरी, क्या मैं तुम्हारी परवाह नहीं करता ।’

‘सुरेश बाबू, माने आपको बुलाया है—चलिये न !’ गौरीने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं ।

‘जवाब क्यों नहीं देती...?’

‘आप चलिये—माने बुलाया है । देरी हो रही है, आइये ।’ कहते-कहते वह कमरेसे चली गयी ।

मैंने पैरोंमें चप्पल डाली और गौरीके यहां फौरन ही पहुँच गया ।

चाय रखते हुए गौरीकी मां बोलीं—‘बेटा, तुम क्या नाराज हो गये ?’

‘नहीं तो माजी ! नाराज क्यों हूँगा ?’ बहुत-सी बातोंके बीच चाय पीकर मैं चला गया ।

दूसरे दिन जब मैं बिस्तरसे उठनेकी चेष्टा कर रहा था, तो मेरे हृदयमें एकाग्र एक कोमल कल्पना दौड़ गयी, आंखोंके सामने एक प्यारी-प्यारी-सी तसवीर घूम रही थी । क्या जाने मैंने क्या लापरवाही की है ?.....कहीं मैं गलत रास्तेपर तो नहीं.....नहीं, आज मैं गौरीसे स्पष्ट कह दूंगा, मैं कह दूंगा—नहीं-नहीं गौरी, मैं तुम्हारी उपेक्षा नहीं करता, तुम्हारी मैं सबसे ज्यादा परवाह करता हूँ—क्या सचमुच तुम अपनी मौन भाषामें मुझसे कुछ कहा करती थी ? नहीं-नहीं, तुमने मुझसे कभी भी कुछ नहीं कहा, अगर तुम कहती, तो मैं अवश्य ही

सौगात

उसकी परबाह करता, मैं लापरबाह नहीं हूँ। नहीं, मैं कुछ भी नहीं कहूँगा, यदि मैंने उससे कुछ भी कहा, तो वह समझेगी कि थोड़ी सी मदद की है, तो उसका बदला किस दुर्भावनासे लिया जा रहा है, किसीके मनपर जबर्दस्ती कब्जा करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। नहीं, मुझे कोई अधिकार नहीं है कि मैं किसीसे इस तरहकी बातें करूँ ! मगर फिर उसने उस लड़कीसे यह क्यों कहा—मैं लापरबाह हूँ, वह लड़की ही फिर ऐसा क्यों कहती थी कि उसकी मौन भाषाको तुम नहीं समझ सके—क्या वह झूठ बोलती थी ? मगर उसे इस तरह झूठ बोलनेकी क्या जरूरत थी ? उसने झूठ नहीं कहा...गौरी मुझे चाहती है, वह अवश्य मुझसे.....न जाने कब तक मैं इसी विचारमें तन्मय रहता, यदि 'सुरेश बाबू !' इस सम्बोधनसे मेरी विचार-धारा न टूटती—मैं चौंकर उठ बैठा, वृद्ध महाशय दरवाजेपर खड़े थे ! प्रणाम किया, बोला—‘आइये, आप आये कब ?’

‘यही दू बजेकी गाड़ीसे तो आ रहा हूँ। हमको आपका सहयोग सौभाग्यसे ही मिला है। गौरीके लिये एक बहुत अच्छा लड़का मिला है। बी० ए० पास है, स्कूलमें मास्टरी करता है, दहेजमें कुछ भी नहीं लेगा, राष्ट्रीय विचारका लड़का है—ठीक आप जैसा स्वभाव और चेहरा !’

क्षण-भरमें मेरा दिमाग भनभनाने लगा, पैरों-तलेसे जैसे जमीन खिसक गई, अस्फुट स्वरमें मुंहसे निकला—‘अच्छा !’

आग्रहपूर्वक घोषाल बाबूने कहा—‘तुम्हारे जैसे भाग्यवान बेटेका संसर्ग मिला, इसीलिए यह काम हुआ, नहीं हमारे भाग्यमें कहां था ?’

बड़े कष्टसे हास्यकी एक रेखा मुंहपर लाते हुए मैंने कहा—‘बड़ी बुझीकी बात है। कब तक विवाह होगा ?’

‘जल्दी ही !’ कहकर वृद्ध महाशय उठ खड़े हुए, बोले—‘अभी तक ज्ञान भी नहीं किया, अब जाऊँ, फिर मिलूंगा !’

उदास भावसे मैं खिड़कीसे बाहर भांकने लगा ; लगा, जैसे मेरा सर्वस्व लुट गया हो ! इसी वक्त दबे पांव गौरी आकर चारपाईके पास खड़ी हो गई—चाय और नाश्ता लिये थी । इच्छा हुई, गौरीको बधाई दूँ—मनकी बात मन ही में रखूँ, पर गौरी स्वयं ही बोल बैठी—‘तुम क्या अभी भी चुप रहोगे ?’ उसके ‘तुम’ शब्दको सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । हाथकी चीजोंको मेजपर रखकर वह कोनेके पास खड़ी हो गई ।

एक अप्रत्याशित घटना होते हुए भी मैं विचलित न हुआ । धीरेसे जाकर मैंने उसके कंधेपर हाथ रखा ! मेरे सीनेमें मुख छिपाकर वह फूटफूटकर रोने लगी । आंसुओंसे मेरी कमीज भीग गई । मेरे मुखसे एक भी शब्द भी नहीं निकल रहा था । गौरीकी पीठपर हाथ रखकर मैं चुप ही रहा । क्षण-भर बाद मैंने कहा—‘तुम तो मेरे मनकी बातोंको समझती थीं गौरी, फिर भी तुमने अपने मनकी बात मुझे इशारेसे भी नहीं समझाई—मुझे तो तुमसे कुछ भी कहनेका साहस ही नहीं होता था, और इसीलिए मैं दो मिनट पहले भी अपने ही मनकी आन्तरिक भावनाको समझनेमें भी असमर्थ था । तुमने उस भावनाको समझनेका मौका ही नहीं दिया । इसके अलावा मेरे पास क्या है, धन-सम्पत्ति कुछ भी तो नहीं, घर-बार मैं जानता तक नहीं, किस भरोसे तुमसे कुछ कहता, और अब भी कुछ तुम्हारे पिताजीसे कैसे कहूँ ! चुपके सिवा और क्या उपाय है ?’

‘मैं धन-दौलतके लिए तुम्हारे पास नहीं आना चाहती और तुम अपने-आपको अगर धोखेमें रखना चाहते हो, तो तुम्हारी मर्जी !’

गौरी कह रही थी कि नीचेसे उसके मांकी आवाज सुनाई दी—‘गौरी !’ मैंने कहा—‘गौरी ! जाओ, मां बुला रही है ।’ और गौरी एकदम उठकर चली गई ।

उस दिनसे मैंने दूसरा ही प्रोग्राम बना लिया । रातको १२ बजे

सौगात

आता और सुबह ७ बजेसे पहले चला जाता । वह मकान, वह मुहल्ला मुझे सब कुछ खानेको दौड़ता । गौरीका समाचार मुझे नौकरसे प्रायः रोज ही मिल जाता था । गौरी प्रायः रोज ही आकर नौकरसे मेरे विषयमें पूछ लेती थी । गौरीके विवाहके दिन मैं किसी तरह न रह सका, उसके घरपर चला ही गया ! गौरीके माता-पिता दोनोंने मुझे घेरकर पूछना आरम्भ किया—‘क्यों नहीं आते ? क्या हुआ ?’ खैर, बहाना बनाया । अन्दर गौरीके पास गया । देखा, उन्हीं पूर्व परिचित कालेज कन्याओंसे गौरी घिरी हुई है । लौट आया । सिर-दर्दका बहाना बनाकर अपने कमरेमें गया । चारपाईपर लेट गया । किसी तरह मनको न समझा सका, आंसू बन्द ही न होते थे ।

आज गौरी मेरी नहीं रही । वह जा रही है । ओह ! कितनी सुन्दर लग रही है इस विवाहकी मुद्दाग-साड़ीमें—यौवनकी सुन्दरता साकार बन कर उतर आई है—पर गौरी—गौरी—

‘तुम रोते हो ?’

अरे, मैं रो रहा हूँ, मुझे ध्यान आया । और इस ध्यानके साथ ही एक सरस मृदुल भार मेरे सीनेपर था ।

भार सजल हो उठा ।

मेरे सीनेसे चिपटी गौरी रो रही थी ।

‘मुझे भूलोगे तो नहीं.....मैं चाहती हूँ, तुम हमेशा मुझे याद रखो—बोलो—बोलो—भूलोगे तो नहीं ?’

और फिर वह सिमरने लगा ।

मैं चुप रहा । क्या कहता ? धुंधलापन गहरा होकर अन्धकार बनता जा रहा था ।

मई '४०

सौगात

होनी रोकी नहीं जाती, किन्तु होनेके बाद जितने मुंह उतनी बातें निकल पड़ती हैं ! रामलालने किसीका कुछ बिगाड़ा नहीं था, मगर उसे बिगड़ा हुआ और आवाज़ कहने वाले अपने और पराये सभी थे। वह आवारा था इसलिए कि वह अभागा था। उसके जीवनकी समस्यायें उलझी हुई थीं—इसलिये कि वह उन्हें सुलझा न पाता था। वह सुलझानेकी कोशिश करता, पर अभागोंकी जिन्दगी ही उलझनकी जिन्दगी है, एक-एक तार जिसका उलझा हुआ है, एक-एक कड़ी जिसकी उलझी हुई है। सुलझावका उसमें नाम भी न था। सुलझानेकी कोशिश भी तो उलझानेके लिये होती है, किन्तु आशा इस जीवनकी सबसे बड़ी देन है—ईश्वरीय देन—बड़ी रंगीन—रससे सराबोर प्रत्येकको बचानेके लिये अमृतमयी।

सौगात

रामलालको भी आशा थी। उसे विश्वास भी हो गया था कि उसके जीवनकी मरुभूमिमें थोड़ा सा गीलापन अगर कुछ है तो शान्ताके जीवन से सम्बन्ध जोड़ना है। डूबते हुए प्राणीकी मुट्ठीमें आया हुआ मिट्टीका ढेला भी काफी सहारा पहुँचाता है। शान्ता उसे सहारा पहुँचायेगी, उसके जीवनको हराभरा कर देगी और लायेगी उसमें नयापन, नया जीवन—सूखे हुए पौधेको जैसे बरसातका पानी हराभरा कर देता है—ठीक वैसे ही !

शान्ता रामलालको छुटपनसे जानती थी, अपना रंगीन संसार वह पहले ही बना चुकी थी। रामलालको वह देवता समझती थी—वह तो सब कुछ समझती थी, पर उसके उस सुनहरे संसारको जबरन उगड़ जाना पड़ा।

किन्तु आज रामलाल यही सोचकर कि जिससे मैंने एक दिन शादी करनेसे इन्कार कर दिया था, उसे पुनः अपनाकर वह उसके जीवनमें हरियाली ही लायेगी। निराशके अन्धकारमें उसने इसीको आशाकी किरण समझा !

विवाह जागरणकी पहली रातको ही शान्ताने कहा था—‘तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध भी मैं आ ही गई, अब जैसे-तैसे दिन बीतेंगे बिता लेंगे। तुम्हारे चरणोंमें स्थान पाकर मैं तो धन्य हो गई, पर तुम्हारी तकलीफका ध्यान आते ही मेरा हृदय कांप जाता है।’

और उसने जवाब दिया था—‘ऐसी बात न कहो शान्ता ; तुम्हारे आनेसे मेरा जीवन सुखमय होगा, शान्तिमय होगा—चिन्ता न करो !’

रामलालने कह तो दिया था, पर उसी समय उसका हृदय जैसे

थर्रा-सा गया था। शान्ता आज उसके भवनमें आई थी—नववधू बनकर, बन हरिणीकी भांति उसके क्रोड़में स्थान पाये हुए थी, किन्तु रामलालके जीवनकी चिर-काम्य-मूर्ति आज उसके सामने न थी, वह कहाँ थी, कैसी थी—कुछ पता न था, केवल मजाकमें कहे कुछ शब्द उसके दिमागमें चक्कर काट रहे थे—‘तुम्हारी शादी होगी तो मुझे अच्छा-सा न लगेगा !’

आशा—हां आशा ही तो रामलालके जीवनकी पहली आशा थी, जिसने उसके जीवनको पहली ही चितवनमें सरस-मधुमय बना दिया था। वह कैसे मिली थी; कुछ याद नहीं, किन्तु मिलनेके बाद तो कितनी-कितनी बातें, कैसी-कैसी कहानियां, आज भी और हमेशाके ही लिये, उसके दिमागकी सम्पत्ति बन गई थीं !

आशाने एक दिन कहा था—‘क्या हम दोनों एक नहीं हो सकते ?’

और रामलाल केवल उसके भोले चेहरेकी ओर देखकर ही रह गया था, कुछ बोल न सका था !

क्रान्तिकी लहर लिये भी व्यक्ति पहाड़से टकरानेमें असमर्थ होता है। हम हिन्दुओंका समाज हिमालय पहाड़से ज्यादा कठोर और ज्यादा सुदृढ़ है ! उससे टक्कर लेना सहज काम नहीं। हिमालयसे भिड़नेकी अभी तक किसीमें हिम्मत नहीं हुई। जो भी उससे भिड़ा, जो भी उससे टकराया, टक्कर खाकर नीचे गिरा और ऐसा गिरा कि फिर उसका पता न लगा, लेकिन मानव जो है कर्ता—उसका जीवन ही प्रगति बना हुआ है—चलना—चलते रहना !

सौगात

वर-वधूके मिलनेकी पहिली रात थी, शान्ता बोली—‘चुप क्यों हो गये ? सोच क्या रहे हो, मनमें दुख हुआ है न ?’

रामलालके मनमें दुख हुआ था, उसका तो कहना ही क्या, वह इस विवाहको न करनेके लिये आत्म-हत्या तककी धमकी दे बैठा था, पर उस समाजने न जाने कितनोंको आत्म-हत्या करनेको बाध्य किया था, वह भला इस धमकीसे—इस बन्दरघुड़कीसे क्या घबराता, क्या डरता !

वह ज्वरन हंसी मुंहपर लाते हुए बोला—‘नहीं शान्ता तुम चिन्ता न करो, ईश्वरने हमें मिलाया है, हमें ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिये ।’

मगर उसका हृदय कराह उठा, मुंहमें हंसी फिर भी थी एक बेवसी की हंसी, जो रोनेसे कम नहीं है ; जिसमें हृदयके करुण क्रन्दनका आभास छिपा रहता है !

किन्तु शान्ताका मन इससे प्रसन्न न हुआ, वह जानती थी उसके इस विवाहमें कितनी व्यथा, कितना मर्म छिपा है । उसे स्वयं अच्छा न लग रहा था, जीतका अभिमान अवश्य था, किन्तु अपने प्रियकी—अपने देवताकी करुण वेदनाका भी वह अनुभव कर रही थी । फिर भी वह विवाह मिलन इस प्रथम-रात्रिको इस प्रकार हताशाके अन्धेरामें नहीं बिता देना चाहती थी । उसने रामलालके हृदयमें अपना मुंह छिपा लिया, केवल दो शब्द उसके मुंहसे निकले—‘मेरे देवता !’

रामलालका हृदय शान्ताके स्पर्शसे भी कांप रहा था, उसकी निरीहा-वस्था उसके लिये असहनीय थी । बड़े धैर्यसे उसने शान्ताके माथेपर हाथ रखा, वह चौंका, बोला—‘शान्ता क्या तुम्हें बुखार है ?’

‘नहीं, मुझे कुछ नहीं, तुम्हारे रहते मुझे कुछ भी नहीं हो सकता, नहीं हो सकता !’

चिन्तित होते हुए भी रामलाल इस रात्रिमें उसके लिये क्या उपचार कर सकता था, यद्यपि उसका दिल कुछ न कुछ दवा आदि करनेके लिये छुटपटा रहा था !

वह बोला—‘शांता ! मालूम होता है, तुम मेरे लिये विशेष चिन्तित हो, और इसीलिये जबर्दस्ती बुखार ला रही हो । इस वक्त तुम सो जाओ, मैं बैठा रहूँगा—तुम्हें देखता रहूँगा !’

शान्ता रामलालके घुंठनोंमें सिर रखके सो गई । रामलाल उसके सिरपर हाथ फेरने लगा । वह अपने जीवनकी—समयसे धुंधली—और आंखोंके सामने ताजी यादको दुहरा रहा था । वह सोचने लगा—लोगोंका ख्याल है प्रेम करना सहज है, और उसे निभाना कठिन, और एक दिन आशाने भी यही बात कही थी—‘मैंने उत्तर दिया था, गर्वसे—“आशा ! प्रेम निभाया नहीं जाता, खुद निभ जाता है, उसमें पूर्णता है—वह अपूर्ण नहीं ।’

और उसने आनन्द-विभोर होते हुए उत्तर दिया था—‘इसीलिए तो मैंने तुम्हारे हाथोंमें अपना जीवन सौंप दिया है—दुनियांकी नजरोंमें न सही, अपने हृदयसे तो मैं तुम्हींमें पूर्ण हो जाना चाहती हूँ ! बाध्य होकर नहीं—अपने-आप ही !’

सुनकर रामलालका हृदय गदगद हो गया था । प्राणोंमें जैसे अमृत का संचार हो गया था । उसका दिल चाहता था उस देवीके चरणोंकी धूल मन्तकपर रखे, और वह यही कहनेको उद्यत ही हुआ था कि आशाने पहले ही करके दिखा दिया । दोनोंने एक-दूसरेको गलेसे लगा लिया था । इस मिलनमें हृदयकी आन्तरिकता छिपी थी—किसीने

सौगात

उन्हें देखा भी न था किन्तु दूरपर खड़ी प्रकृति जैसे मुस्करा रही थी, जिसे इन दोनोंने देखा न था, न देखनेकी कोशिश ही की ।

प्रेम—हां, इन दोनोंने प्रेम ही तो किया था—जीवनकी एक बड़ी भारी कमजोरी है यह प्रेम, प्रकृतिकी दी हुई भीषण सजा,—मानव उसे अपनानेके वाध्य है, विवश है । किन्तु इन दोनोंने इस सजामें भी परिपूर्णताका आभास देखा था, अपूर्णता तो उन्हें समाजमें ; उसके नियम-कानूनमें, नजर आ रही थी, जिसने उनके मधुर विवाह-बन्धनमें जबर्दस्त रोड़ा खड़ा कर दिया था ।

किन्तु रामलाल सोच रहा था—आशाने उस दिन विनोदमें कहा था—‘तुम्हारी शादीसे मुझे कुछ अच्छा-सा न लगेगा !’

प्रेमियोंको एक दूसरेकी बात अच्छी ही लगती हैं, किन्तु कभी-कभी कोई बात ऐसी हो जाया करती है, जिसमें सचाईकी पराकाष्ठा रहती है—हृदयकी बात ।

आशा यह तो चाहती न थी कि उसका रामलाल बेघर-बारका हो जीवन-भर भटकता रहे । दुख और मुसीबतोंके पहाड़ लांघे, पर फिर भी वह कह गई—उसके मुंहसे बिन बोले यह बात निकल गई—और रामलालको भी तो इस बातमें न जाने क्यों इतना विश्वास हो गया था कि उसने भी यह निश्चय कर लिया था कि वह शादी अब करेगा ही नहीं ।

लेकिन सोची हुई बातें कब पूर्ण हुईं — वे तो बनी ही हैं अपूर्ण रहनेके लिए । सोची हुई बातें मृग-तृष्णा हैं जिनका कोर किनारा नहीं, धधकती ज्वालामुखी हैं, जो कभी न बुझता है, न बुझेगा—मानव अपूर्ण जो है !

और रामलालका हृदय सोचते-सोचते पुनः एक बार कांप गया, जैसे कोई भयंकर पाप किया हो—ऐसा पाप, जिसका कोई प्रायश्चित्त न हो !

उसने शान्ताके गरम शरीरको एक ओर धकेल दिया, वह उठ बैठा और कमरेमें चहल-कदमी करने लगा ! शान्ताने आंखें खोल दीं । सुख आंखोंसे उसने रामलालको देखा । रामलाल पुनः वहींपर बैठ गया, बोला—‘शान्ता !’

‘तुम अभी तक सोये नहीं ?’

‘तुम सो जाओ, तुम्हें बुखार है न ?’

‘तुम भी सो जाओ !’

कदकर शान्ताने आंखें मींच लीं—वह जैसे बेहोश-सी हो गई ।

रामलालने उसके माथेपर हाथ रखा, वह तबे-सा तप रहा था, वह डर गया । कुछ क्षण सोचता रहा, फिर चुपचाप सो गया !



रामलालकी शादी हुए तीन वर्ष हो गये हैं । उसके एक बच्चा भी है । जैसे शादीके दिन, बेसे ही पुत्र-जन्मके मौकेपर आशाने अपने यहांसे बधाइयोंके पत्र भेजे थे । लिखा था, मिठाइयां मेरे हिस्सेकी जमा रखना, कभी ले लूंगी !

उसने सोच लिया था, आशा अब मुझे भूल जायेगी, वह अब मुझे भूलनेकी कोशिश कर रही है, अब वह मुझसे नफरत भी करने लगी होगी, किन्तु वह स्वयं आशाको कैसे भूले ? भूलने योग्य जो हो, उसीको तो भूला भी जा सकता है—अपने जीवनको ही कोई कैसे भूले !

सौगात

वह तो भूलनेके लिये नहीं ! मानवका स्वभाव है । अपने-अपने लिए सभीका यही ख्याल रहता है !

बारें होती रहती हैं, जीवन बीतता रहता है ; संसारका काम चलता ही रहता है । किसीको किसीकी क्या चिन्ता, क्या काम ?

रामलालके मनपर जो कब्जा हो चुका था, उसे वह सब कुछ होने पर भी न भूल सका—कैसे भूलता ? वह भी तो जानती थी, उसका रामलाल सब कुछ होते हुए भी क्या नहीं भूल पाता ? सुख दुःख, हैरानी-परेशानी, हंसी-खेल और स्वप्न तथा जागृणमें वह क्या देखा करता है । विवाहसे पहले ही वह आशाके बारेमें सब सुन चुकी थी, किन्तु पहले वह इस बारेमें जरा भी न सोच पाई । आजका शतांश भी नहीं । और आज जब वह सोचने लगी, तो सोचते-सोचते जीवनको ही दूबर कर बैठी । बच्चेके जन्मके बाद ही वह अपने-आपको रोगसे न बचा सकी, और आज—वह मृत्यु-शय्यापर पड़ी-पड़ी जीवनकी अन्तिम घड़िया गिन रही थी ।

संसारका क्रम एक है, प्रगति एक है, लक्ष्य एक है, किन्तु मानव-स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं । एक कुछ सोचता है, दूसरा कुछ और ही सोचता है ! जीवनको कोई बचानेकी चिन्तामें है, कोई मारनेकी । आशा रामलालके लिए सुलझी हुई पढेली थी, किन्तु शान्ताके लिए वही उसलझी हुई । आशा रामलालके लिए जीवन थी, तो शान्ताके लिए मृत्युका वायस—एक अशान्त विषम ज्वालामयी—भयंकर लपटोंवाली !

वह निरीद अवस्थामें पड़ी-पड़ी जीवनके देवताको निहारती जा रही थी । रामलाल उसके सिरहाने बैठा बैठा एक पत्रपर देरसे नजर गड़ाये

हुए था। किन्तु एकाएक आंसू भरी आंखोंसे वह शान्ताके निरीह चेहरेकी ओर देखने लगा—जैसे वह उसके रोगका कुछ हिस्सा अपने ऊपर लेना चाहता हो—जैसे वह कुछ प्रायश्चित्त करना चाहता हो—कठोर, किन्तु सुन्दर और मर्मस्पर्शी !

असह्य वेदनाकासा भार लिये शान्ता बोली—‘आराकाकी चिठी है ?’

रामलालने शान्ताके माथेपर हाथ फेरा, बोला—‘वह बीमार पड़ी है, बुलाया है मुझे, विवाह और बच्चेके होनेकी मिठाई भी मंगाई है !’

‘तो एक बार उसे देख आओ,—उसके जीवनको बर्बाद करके मैं इस मौकेपर भी तुम्हें कैसे रोकूँ ?.....और बच्चेको ही उसकी गोदमें देकर कह देना कि यही तुम्हारी खुशियालीकी सौगात है—मिठाई !’

‘छिः शान्ता ! कैसी बातें कहती हो—तुमने क्या किया ?’ रोकते-रोकते भी रामलालके आंसू गिर ही गये !

सिसकते गलेसे शान्ता बोली—‘मुझे क्षमा कर देना ! मैं अपने जीवनमें तुम्हें सुख न दे सकी !’ जबरन रोकी हुई करुणाकी अश्रु-धारा अब शतमुखी होकर वह निकली । रामलाल सोच भी न सका कि क्या कहे ? असह्य व्यथा-भरे स्वरमें उसने कहा—‘नहीं-नहीं शान्ता ! ऐसी बातें क्यों कहती हो, तुमने क्या किया—यह तो मेरा भाग्य है ।’

और सचमुच ही तो शान्ताने क्या किया था ? अपना जीवन बलिदान कर भी वह अपने रामलालको सुखी करना चाहती थी, किन्तु दुखी जीवनमें सुख कहाँ ? दुख-सुख मनुष्य-जीवनके लिए एक गूढ़ पहेली हैं, चिर कालसे आती हुई । मनुष्य दुखको उसी समय अपना लेता है, जिस समय वह अपने सुखका आधार किसीको मान लेता है, और

सौगात

वास्तवमें अगर वह ऐसा आधार न माने तो उसे सुखका अनुभव हो ही नहीं सकता ।

किन्तु रामलालकी स्थिति कुछ अजीब थी, जीवनकी समस्यायें सिमट कर जैसे मृत्युका भीषण रूप धारण किये उसके सामने खड़ी थीं !

इधर शान्ता मृत्यु शय्यापर पड़ी थी, तो उधर आशाके पत्रमें लिखा था कि मौत उसका दामन थामे खड़ी है । वह जैसे स्वयंको ही इन दोनोंकी मृत्युका कारण समझ रहा था । सहसा उसके मुंहसे निकल पड़ा—‘आबादी ही बरबादी है !’ और वह उठकर खिड़कीके पास खड़ा हो गया । हवाका एक झोंका उसका शरीर छूकर निकल गया ! पुनः वह विचारमें डूब गया ।

उसने कहा—‘तुम विवाह करोगे, तो मुझे कुछ अच्छा-सा न लगेगा ।’ पर मैं कर बैठा, मैंने उसे धोखा तो नहीं दिया ? शान्ता क्या चाहती थी ?—अपने प्यारके बदले प्यार, पर मैं उसे बदलेका भी प्यार न दे सका । मगर आशा तो मृत्यु-शय्यापर पड़ी है, उसने मेरा अन्तिम बार आह्वान किया है, मुझे जाना चाहिए ; पर इधर शान्ता—वह अत्यन्त कष्ट और क्षीण दृष्टिसे रामलालको देख रही थी ।

रामलाल पास आकर बोला—‘शान्ता ?’

शान्ता कुछ बोली, पर रामलाल समझ न पाया । और इसी वक्त रामलालने देखा, शान्ताने आंखें बन्द कर ली हैं !

रामलालने उसके मस्तकपर हाथ रखा, उसे हिलाया-डुलाया, पर वह तो सदाके लिए आंखें मूंद चुकी थी । विमूढ़की भांति रामलाल एक-एक उसकी ओर देखता रहा । आंखोंसे बड़े-बड़े आंसू टपक पड़े ।

विवश मानवकी मानवता सजग हो उस निस्तब्धतामें करुण क्रन्दन कर उठी ।

रात गुजरी । सबेरा होते ही घर-परिवारवालोंने मृत शरीरको घेर लिया । संस्कारकी तैयारी होने लगी । रोने-धोनेका कोहराम मच गया । रामलाल एक किनारे चुपचाप खड़ा सोच रहा था—

क्या शान्ताके जीवनको मैंने ही बरबाद किया ? किन्तु किसलिए... किसके लिए ? क्या आशा... उसने क्या किया ?... किन्तु वह भी तो मृत्यु-शय्यापर है... किसके लिए ?... कहा था न उसने—‘तुम शादी करोगे, तो मुझे कुछ अच्छा-सा न लगेगा ।’ क्या इसीने उसे इस दुनियासे ही अच्छा न लगने दिया ?

शान्ताका अन्तिम संस्कार हो रहा था । धू-धू करती चिता कुछ ऊपरको उठ रही थी, और रामलाल सोच रहा था—‘शान्ताकी दी हुई आशाके लिए अभी सौगात पहुँचानी बाकी है... मगर कैसी आशा... सान्त्वना... और वह पैशाचिक हंसी हंसता हुआ वहांसे चल दिया ।

वह चल दिया उसी क्रमशील संसारमें, परिवर्तनशील संसारमें ! अपने-पराये सान्त्वना दे रहें थे,—रीत है दुनियांकी, आनेवाला जाता ही है । जाना ही मानवका धर्म है ।

हां, जाना मानवका धर्म—यह तो रामलाल जमानेसे सुनता आ रहा था, अपने मुंहसे भी कहियोंको सुना चुका था, फिर यह सान्त्वना कैसी ! मरनेवालेको किसीने रोका नहीं, आनेवालेको, पानेवालेको किसीने पाने न दिया, आन न दिया, फिर यह सान्त्वना कैसी, कैसी सहानुभूति ?

सौगात

धर्म...हां, दुनियामें रहनेका धर्म है। हां, यही धर्म तो अब रह गया है—पुराने कालसे चला आता हुआ, आदर्शपर भूलनेवाला धर्म, समाजकी रूढ़ियोंमें बंधा हुआ धर्म, यथार्थपर आंखें तरेरनेवाला धर्म है न, इसीलिए ! सचाई कड़वी है, इसीलिए उसे आदर्शकी आड़में छिपाया जाता है—!

रामलाल फिर भी चिन्ता कर रहा था—शान्ताकी सौगात आशाके पास पहुँचा देनेके लिए ; किन्तु क्या वह स्वीकार करेगी ?

‘आपका तार है बाबू !’

रामलालने शिथिल हाथोंसे तार खोला, पढ़ा—‘तुम्हारे दर्शनोंके लिए तड़फती हुई आशा अब सदाके लिए संसारसे विदा हो गई ।’

विद्विषकी भांति रामलालके मुँहसे निकल पड़ा—‘और सौगात ?’

दिवाली १९४१

समाप्त

